



रांगेय राघव

मेरी
प्रिय
कहानियां

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178714

UNIVERSAL
LIBRARY

मेरी प्रिय कहानियां

रांगेय राघव

रांगेय राघव की अब तक लिखी
अनेक कहानियों में से उनकी अपनी
पसन्द की विभिन्न विषयों की नौ उत्कृष्ट
कहानियां—प्रत्येक कहानी पर उनके वक्तव्य सहित

रा ज पा ल ए ण्ड स न्ज़, दि ल्ली

मूल्य : तीन रुपए (३.००)
प्रथम संस्करण : मार्च, १९५६
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

दो शब्द

ऐसा नहीं है कि पुराने ज़माने में सभी लेखक अपने यश से तृप्त रहते थे। सेनापति अपने को इतना अच्छा कवि मानते थे कि उन्हें चोर-कवियों से सदैव सावधान बने रहने की इच्छा बनी रहती थी। उनसे अच्छे कवि थे कालिदास। गुरु में लोग उनकी सुनते ही नहीं थे तो वे कहते थे: भाई, जरूरी थोड़े ही है कि सभी पुराना अच्छा हो और नया सभी बुरा हो—अपनी अक्ल से काम लो। पर व्यास जैसे कवि को सुन भी लिया जाता था तो वे यों रोया करते थे कि—मैं कब से हाथ उठाकर चिल्ला रहा हूं, मेरी कोई सुनता ही नहीं। इधर एक मित्र कहते थे—अजी पचास बरस तक रवींद्रनाथ की भी क्या पूछ थी? मेरा भी वक्त आएगा। किसी लेखक को यह शिकायत है कि—मैंने इतना लिखा पर मेरी तूती नहीं बोलती। शेक्सपियर की भी यही हालत रही थी।

इतना हो तो बुरा नहीं। पर अब दूसरा पक्ष प्रारम्भ होता है—मैंने जो वह कहानी लिखी, उससे चेखव को डर लगने लगेगा। एक लेखक ने एक उपन्यास लिख लिया और कह रहे थे—अभी तक मैं नाटक-सम्राट् था। मुझे डर है, कहीं मैं अब उपन्यास-सम्राट् न मान लिया जाऊं! एक लेखक ने आत्मविज्ञापन में लिखा—‘प्रेमचंद और शरच्चन्द्र की सम्मिलित प्रतिभा हूं।’ एक बहुत नामी लेखक अपनी किताब पर छपवाते हैं—‘तात्सर्तों की याद आती है इनकी रचनाएं पढ़कर’। यों हिन्दी में वाल्टर स्कॉट हैं ही। मजा यह है कि

प्रयोगवादियों में एकाध टी० एस० इलियट भी हैं और अभावों की कचोट ऐसी है कि उन्होंने गुबरीला आंख का विकास कर लिया है और शीशा सामने रखकर उन्हें अपने सिवाय कुछ नहीं दीखता ।

इन दो कारणों से एक लेखक चुनता है—मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानियां, वे जो उपेक्षित हैं, पर अच्छी हैं ।

दूसरा चुनकर रखता और कहता है—मेरी ४०० में से चुनी ७० कहानियां बेजोड़ ।

दोनों छोटे टुटपूँजिए । इतना भी सन्न नहीं कि वक्त अच्छे-बुरे का फैसला करता है, न कि आज के ये अध्यापक, स्कूलमास्टर जो कोर्स की किताबें भर पढ़ते-लिखते हैं । सचमुच आज वे मतवादी और मित्रवादी गुट भी कल व्यर्थ रहेंगे । फिर भवभूति की तरह रोया क्यों जाए—शायद मुझ जैसा कोई पैदा होगा फिर ! कोई न पूछे तो हाय-हाय क्यों ? कोई पूछ ले तो क्या मिल गया ? पर जमाना डेमोक्रेसी का है । यहां वोट चाहिए, सो लेखक भी मांगता है ।

सवाल है, मेरी उपेक्षा करने योग्य बुद्धि किसमें है ? और मेरी उपेक्षा की जाए, सो मैं इतनी बुद्धि रखता हूं या नहीं ? प्रश्न है—मैं कैसा लिखता हूं ? यह मैं नहीं जानता । क्यों लिखता हूं ? मेरी तबियत । आप पूछने वाले कौन ? आपको किसी डॉक्टर ने नहीं कहा कि मेरी रचना पढ़ें । आप कहते हैं कि जनता को ठगता हूं । और आप जो जनता के दावेदार हैं, आप कम ठग हैं ? एक लेखक ने तो गाली देने के जोश में एक 'स्त्रीनाम' से लेख लिखा और व्यक्तिगत विद्वेष निभाए ! एक प्रसिद्ध लेखक ने कसकर छींटा मारा । अचानक बाद में वह लेखक मिल गया, जिसके बारे में लिखा था । उससे प्रसन्न हो गए, जाने क्यों ? बाद में उन्होंने अफसोस किया—मुझे एक दिन पहले वह आदमी मिल जाता तो मैं वैसा न लिखता ।

अच्छे-बुरे का सवाल नहीं । हिंदी का हर लेखक अपने को सब से अच्छा समझता है, क्योंकि हिंदी में बड़े बाप के बेटे व्यवसायी होने

पर ही 'सम्मानित आलोचक' मान लिए जाते हैं क्योंकि उनके हाथ में मनचाहा लिखने को एक पत्र होता है। हिंदी में विशेषज्ञ कम हैं, उनकी जगह प्रकाशकों ने ले रखी है—जिनमें पढ़े-लिखे भी कम ही हैं। यों यह दास्तान लम्बी है। चालों में 'भेड़चाल' मशहूर है। वह हिंदी आलोचना में है, यह फिर 'उखाड़वाद' है। तीसरा वर्ग है 'जय-जयवाद'। मुझे हिंदी में अभी आधुनिक साहित्य का विवेचन ठीक नहीं लगता। परंतु हो जाएगा। यह सदा-सदा से होता आया है—और ऐसा ही चलता जाएगा—मनुष्य का स्वभाव जो ठहरा।

ऐसे में 'सर्वश्रेष्ठ' की बात ही क्या? कुछ नहीं।

फिर प्रश्न उठा—आपने क्यों किया यह संग्रह?

सुनिए।

अधिक कहानियां नहीं लिखी हैं—शायद सन् १९३६ से १९५८ ई० तक यानी २२ साल में लिखी हैं अस्सी या पचासी। हिंदी की आलोचना का मजा है कि जब ये पत्रों में छपती रहीं तब प्रायः संपादकों, आलोचकों ने पत्र भेजे, भई मजा आ गया, क्या 'विगर' है! बाद में कहा—क्या लिखा है, कुछ नहीं। दोनों तरह के पत्र मेरे पास हैं, पर उनको न तब मैंने छपवाया जब उनमें प्रशंसा थी, न तब जब निंदा है। छपवाना भी नहीं चाहिए। उनका क्या मूल्य है? कल कहीं मेरी कहानी बची रह गई, तो व्यर्थ ही एक टुटपूँजिए रफूगर का नाम भी इस दर्जी के साथ अमर न हो जाए—यह डर अक्सर 'अपने मुंह मियां मिट्ठू' अनुभव कर ही डालते हैं और फिर मनुष्य की अमरता की क्षुद्रता को देखकर हंसा करते हैं। यों मैं आखिर में आ पहुंचा उस कहानी तक जिसे कहते हैं सब—गदल। प्रायः सब ने उसे अच्छा कहा, पर कोर्स संबंधी आलोचक नहीं बोले क्योंकि वह कोर्स में आई नहीं। और कमबख्त कहीं आ गई तो ये लोग उसमें वह-वह खूबियां ढूँढ निकालेंगे जो मैं नहीं जानता। नहीं बोले वे भी जो व्यक्तिगत विद्वेष रखने का दावा करते हैं। मोटी अकल वाले तब नहीं बोलते जब कोई

और से बोलता है । लंगड़ा तब बैसाखी नहीं खड़खड़ाता जब कोई भाग रहा हो । मुझे तो अब मज़ा आता है और यों मैंने संग्रह किया है उन रचनाओं का जो मुझे अच्छी इसलिए लगी हैं कि वे अभी तक अपनी जैसी बनी हुई हैं । न मुझे कोई ऐसी चोट लगी है कि कवि शैली की तरह कहूं—अंत में उठा एक फ़ैटम...

कहूंगा यही—'कैसे मूर्ख हैं ये मर्त्य (Mortals) !—शेक्स-पियर ने ठीक ही कहा था ।

अंत में मैं पाठकों से कहता हूं कि यह जो मैंने यहां लिखा है वह मेरी समझ में ऐसा है । हो सकता है पाठक इन कहानियों को और भी अच्छा समझें, हो सकता है बिल्कुल ही बुरा समझें, मैं उनको और समय को सब से बड़ा मानदण्ड मानता हूं ।

—रांगेय राघव

कहानी-क्रम

कुत्ते की दुम और शैतान : नए टेक्नीक्स	६
पंच परमेश्वर	३१
प्रवासी	५७
घिसटता कम्बल	६५
गूंगे	१०५
धर्म-संकट	११५
फूल का जीवन	१२६
नई जिन्दगी के लिए	१४७
गदल	१५५

कुत्ते की डुम और शैतान | १ नए टेकनीक्स

इस कहानी के सम्बंध में

यह रचना मैंने किसी विद्वेष से नहीं लिखी, लेकिन इसका असर यह हुआ कि कई लोगों ने मुझे इसके लिए धन्यवाद दिया। जब ऐसा हो तो समझना चाहिए कि चीज कुछ थी। और 'पेशे-वरों' ने इसका विरोध नहीं किया, तो समझिए कि डर रहे हैं कि पूरी तरह कहीं जात पर न उतर आए, क्योंकि वस्तुतः आलोचक असल में लेखक को देखकर न केवल 'हाय-हाय' करके जलता है, वरन् उससे डरता भी है।

जहां तक टेकनीक का सवाल है यह कहानी एक नए ही टेकनीक से लिखी गई है। इसमें पात्र कहीं आते नहीं, समाज के प्रतिनिधियों की कलम बोलती है। वह किन-किन 'अहं', 'स्वार्थ' आदि कारणों से प्रेरित होती है, वही मैंने इसमें ऐसे खड़ा किया है कि चरित्र की अपनी विशेषता सामने आ जाती है।

मैं समझता हूं कि इस संग्रह की जान इसकी पहली कहानी है। कोई अगर मुझसे कहे कि 'आप नहीं समझते', तो मैं कुछ नहीं कहूंगा सिर्फ यह दिखा दूंगा कि मैं एक हाथ में कलम और

दूसरे में शीशा रखता हूँ। जब यह खयाल आता है कि मैं बड़ा कमाल कर रहा हूँ, तब ज़रा उसे अपनी तरफ घुमाकर भाँककर भेंप लिया करता हूँ और जब यह मुगालता होता है कि 'वे' ठीक कह रहे हैं, तब उन्हें दिखा देता हूँ। तब उनकी बारी भेंपने की होती है।

(इस कहानी का एक महत्व है। यह मनुष्य के बाह्य पर जाकर सीमित नहीं हो जाती। यह युग-युग का सत्य है, क्योंकि उसके भीतर की निकृष्टता को बाहर खींच लाती है। जब युग का सत्य युग-युग के सत्य से तादात्म्य करता है तब उस कला का जन्म होता है, जो शाश्वत कहलाती है; यानी वह जो कुछ दिन ब्यादा रहती है—यह 'कुछ' दस-पन्द्रह बरस से चार-पाँच हजार बरस भी हो सकता है, पर चार-पाँच हजार साल का मूल्य ही क्या है, समय के महान प्रसार में ?

आज सभी पत्रकार आलोचक हैं, बल्कि जैसे ये स्कूल-कॉलेजों के अध्यापक अपने को साहित्य-महारथी मानते हैं, वैसे ही ये पत्रकार भी मानते हैं। शायद मैं लेखक के उस महान् उद्देश्य की ओर, इस कहानी के द्वारा, इशारा कर सका हूँ। यह तो हुई मोटे तौर की बात। पर असल में मेरा उद्देश्य व्यंग्य नहीं, स्नेह का सृजन है। कथानक, चरित्र-चित्रण, और अन्य गुणों के हिसाब से मेरी यह कहानी जितनी पूर्ण है, उतनी और कोई कहानी इस ढंग की मैंने नहीं लिखी।

इस कहानी में मैंने दोनों बातों का निर्वाह किया है—यथार्थ का सत्य और सत्य का यथार्थ। इसलिए जिन्होंने इसे पूर्वाग्रह छोड़कर पढ़ा है, उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इसमें एक ऐसी गहराई है जो बहुत कम जगह ही मिलेगी।

जब मैं अपने बारे में लिखता हूँ तब जरूरी है कि मैं इसके दोष भी गिनाऊँ। इसमें सचमुच दो बड़े दोष हैं। यदि वे न होते

तो यह बहुत अच्छी होती। एक है कि यह लेखकों को 'सहज ग्राह्य' नहीं है और दूसरा है कि यह आलोचकों को 'सहज स्वीकार्य' नहीं और मुझे इसका बड़ा अफसोस है कि मैं इन कमियों को दूर नहीं कर सकता। पर मुझे इसका क्या डर ? भला हो इन आलोचकों का जो पढ़ते ही नहीं। पढ़ेंगे तभी न गुण-दोष की परख होगी। पर वे ऐसी कच्ची गोली नहीं खेले। 'अप्रस्तुत विधान' और 'कुक्कुट अलंकार' वैसे इसमें है जरूर ! है, वैसे उनके मतलब की बात का मैंने सृजन कर तो दिया है। आगे, मैं तो तब तक ठहरने का इंतजार कर सकता हूं जब कोई कहानी और न मिले और यही कोर्स में रख ली जाए, और तब पढ़ी जाए और इसके अर्थ के अनर्थ किए जाएं। हो सकता है इसकी परंपरा-पृष्ठभूमि कबीर में मिले।

कुत्ते की डुम और शैतान : नए टेकनीक्स

फरवरी

इलाहाबाद के एक पत्र में छपा—

उपसंहार

‘कहने के लिए जो कुछ कहा जाए, उसपर विश्वास कर लेना ही तो काफी नहीं ।’ दोनों आंखें उठाते हुए उसने कहा ।

चंचल समझा नहीं । उसने फिर कहा—पर तुम मेरी बात मानती क्यों नहीं ?

‘मैं यही जानती हूं कि लेखक अपने बारे में जो कुछ कहता है, वही सब उसके बारे में काफी नहीं होता । लोग उसके बारे में क्या कहते हैं, मैं इसीपर अधिक ध्यान देती हूं ।’ सुषमा ने चाय में चीनी मिलाते हुए कहा ।

चंचल ने सुनकर भी नहीं सुना ।

बाहर धूप सुनहली पड़ गई थी । चंचल ने सामने की ओर इशारा करके कहा—भील पर अब कुहरा नहीं है, घूमने चलती हो ?

‘जरूर ।’

चंचल ने जर्किन ठीक की, बालों पर कंधा फेरा और जूते साफ किए । सुषमा ने ओवरकोट पहनकर एक बार आदमकद शीशे में भांक-

कर देखा और दोनों पहाड़ से उतरने लगे ।

ऊबड़-खाबड़ ढोंकों पर संभलते हुए वे नीचे उतरकर सड़क पर आ गए । सड़क अभी तक बस-स्टैंड के पास गीली थी, भील के फर्न मटमैले-से दिखाई दे रहे थे । मैले और फटे कपड़े पहने पहाड़ी कुली जिन्दगी की भयानक कशमकश में दुहरे होकर पीठ पर बोझ ढोते पहाड़ पर बंगलों की ओर चढ़ रहे थे ।

सुषमा ने पल को भी उधर दृष्टि नहीं टिकाई । कहा—वह देखो बादल उधर मुड़ गया, चलो राईडिंग करेंगे ।

चंचल ने सिगरेट सुलगा ली और भील के किनारे की रेलिंग थाम-कर कहा—आज फिर ?

सुषमा झुंझला उठी । बोली—क्यों ? आज क्या कोई मुसीबत है, या आपके दिमाग में कोई प्लॉट आ रहा है !

चंचल ने सिगरेट का धुआँ एक बार आकाश की ओर छोड़ा और कहा—तुम जा सकती हो । जब तक मैं तुम्हारे साथ रहूँगा, तब तक मेरी कला मेरा साथ न देगी । मैं आज तक एक विश्वास के बल पर जीता रहा हूँ सुषमा ! मुझे अपनी रिक्ति से बढ़कर प्यारा कुछ नहीं है ।

सुषमा ने देखा । आंखों में एक तिकत व्यंग-सा छलका और चला गया । क्षण भर वह उसे घूरती रही ।

फिर चंचल ने देखा । सुषमा घोड़े पर दौड़ी जा रही थी, साईंस पीछे-पीछे दौड़ रहा था । फ्लैट के मोड़ तक चंचल की आंखें उधर ही लगी रहीं, फिर वह पेड़ों की ओट में ओझल हो गई ।

चंचल ने पानी में कंकड़ फेंका । लहरियां दूर-दूर तक फैल गई ।

अन्धकार घिरता आ रहा था । भील के किनारे की बस्तियां जगमगा रही थीं । पहाड़ों पर बसे नैनीताल के घरों की खिड़कियां बिजली की रोशनी से चमकने लगी थीं । भीनी ठंड अब तीखी हो चली थी । चंचल ने देखा वह अकेला रह गया था ।

—सरदार जसवन्त सिंह, बम्बई

दो

मार्च

पटना के एक पत्र में छपा—

यों तो आजकल कई कहानियां लिखी जाती हैं, किन्तु सरदार जसवंत सिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' पढ़कर बड़ी राहत मिली। कहानी का अन्त बहुत जानदार हुआ है। मेरी आंखों में अभी तक चंचल खड़ा है। भील को वह देख रहा है—यहां तक कि लगता है जैसे भील एक बड़ी आंख है, जो चंचल को देख रही है। दोनों में हमें बड़ा अजीब-सा अपनापन दिखाई देता है।

सुषमा का चरित्र पारे की तरह का दुलमुल नहीं है। उसमें स्त्री-जाति के उस वर्ग का वर्णन है जो पुरुष की किसी विशेष प्रसिद्धि के पीछे दौड़ती है और अपनी यश की प्यास में यह नहीं देखती कि यश कमाना सहज नहीं होता। उसके लिए त्याग और साधना की आवश्यकता पड़ती है।

(हिन्दी में देखा जाए तो प्रेमचन्द के बाद कोई कहानीकार नहीं हुआ। प्रेमचन्द में एक चीज़ थी जो अब नहीं मिलती। वह है एक सुव्यवस्थित कथानक का कहानी में आवश्यक रूप से बना रहना। मैं बड़े सन्तोष के साथ स्वीकार करूंगा कि सरदार के कथानक में एक व्यवस्था है। और आश्चर्य यह कि नितांत साधारण होते हुए भी घटना अपनी छाप छोड़ जाती है।)

यथार्थ के दृष्टिकोण से हम यही कह सकते हैं कि आज जिस सीमित दायरे में मनुष्य को बांधा जा रहा है, वह युग-युग का साहित्य नहीं बनने देगा। राजनीति ही सब कुछ नहीं हो सकती। मैं मानता हूं सरदार की कहानी की तुलना मैं समरसेट माँम की किसी कहानी से नहीं कर सकता। परन्तु जहां तक वातावरणपरक (ऐटमॉस्फेरिक) कौशल है, उसमें लॉर्ड डन्सनी से कम ताकत नहीं है।

कला प्रचार ही तो नहीं है। वह तो मनुष्य की इकाइयों को जुटाती है, पाठक अपने बल से ही रचना से साधारणीकरण करे तो ही हम विकास के पथ पर हैं। हमारा युग लघुता का युग है और विराट् सृष्टि के क्षेत्र में इस लघुता का जो नया सामंजस्य है वह एक ओर सुषमा की उपेक्षा में है, तो दूसरी ओर चंचल की अतृप्ति में, जिसमें उपेक्षा निरासक्ति की सीमा तक पहुंच गई है।

सरदार जसवन्त सिंह ने इधर कई कहानियां लिखी हैं और यदि वे शिल्प की ओर और थोड़ा ध्यान देते तो अवश्य वे उपन्यासकार लायन फ्यूकवेंगर का-सा सजीव चित्रण करते। (अमेरिका में जो सार्त्र का अस्तित्ववाद अपना प्रभाव डालते-डालते रह गया, उसका कारण यही था कि यौन विकृतियां वहां अभी उतनी नहीं फैल सकी हैं—मेरा तात्पर्य सांस्कृतिक उपचेतन के स्तर से है—जितनी फ्रांस में, जिसका बाह्य आपको पियरे लुई की 'किंग पॉसौल्स एडवेंचर्स' में मिल जाएगा।) हिन्दी में भी कृतित्व होगा और वह दिन दूर नहीं है जब अच्छी कहानियां लिखी जाएंगी। उस समय लोग यह देखेंगे कि सरदार की कहानी उन कहानियों में से थी जिसने नए रास्ते की तरफ मोड़ लिया।

—वामन पाण्डुरंग चरमरकर, पूना

तीन

कलकत्ता के एक पत्र में छपा—

कल ही एक महिला ने मेरे पास एक पत्र भेजा था। महत्त्वपूर्ण समझकर इसे आपके पास भेज रहा हूं, क्योंकि इसमें एक साधारण पाठिका का स्वर है। हमारे दिग्गज लेखक अग्ने गुस्त्व में बैठे हैं, साधारण पाठक-पाठिकाओं का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। सरदार की कहानी पर ध्यान देना आवश्यक है। पत्र यों है, मैं संदर्भ वाक्यों को उद्धृत करता हूं—

‘अभी सरदार जसवन्त सिंह की ‘कुत्ते की दुम और शैतान’ कहानी पढ़ी।

‘कहानी क्या है, जी हुआ पत्रिका को जला दूँ । बारह आने और आधे घण्टे का खून था । अच्छा होता मैं इसे खरीदकर पढ़ने की बजाय सिनेमा देख आती ।

‘यह आधुनिक युग ! और उसमें एक स्त्री को सारी स्त्रियों का प्रतिनिधि बनाकर इस तरह ‘पेंट’ करना ! पता नहीं किस तरह इस ‘पेट्रि-आर्किकल सोसायटी’ के ‘ट्रेडीशन्स’ को ‘रिप्रजेंट’ करती है यह ! (जैसे स्त्री का कोई चिन्तन ही नहीं, कोई अस्तित्व ही नहीं !! लेखक इसपर ज़रा भी जोर नहीं देता कि चंचल में पौरुष नहीं ! घोड़े पर चढ़ते डरता है, बस सिगरेटें फूंकता है ! और काम क्या करता है कि भील को देखता रहता है !)

‘मैं तो कहूंगी कि शायद वह सरदार जसवन्त सिंह जैसे तृतीय श्रेणी के लेखक का प्रतिबिम्ब है, जो शायद ही कभी कुछ पढ़ने योग्य लिखते हों । वैसे मैं तो नाम देखकर ही उनकी कोई चीज़ नहीं पढ़ती, क्योंकि वह पढ़ने योग्य होगी भी क्या ।

‘पर तुरा देखिए कि लेखक किस तरह चंचल से सहानुभूति और पक्षपात दिखाता है ! वह चाहता है कि सुषमा सिर्फ यही ज्यों का त्यों मान ले कि जो चंचल अपने बारे में कहता है वही ठीक है । क्यों माने वह ? आजकल भी क्या मान जाने की विवशता कायम रह सकती है ? गस्ताव फ्लॉबेअर, डिकेन्स और दोस्तोएवस्की को पढ़ने वाले बिना तर्क के कभी भी कैसे स्वीकार कर लेंगे कि आज की कहानी का आयाग पहले से भी छोटा हो गया है । सरदार की कहानी की इनसे तुलना करने पर ही कला का दायित्व प्रगट होता है ।’

यों तो पत्र और भी हैं, पर इत्यलम् ।

— जगभूषण मतवाला, नागपुर

चार

बम्बई के एक पत्र में छपा—

सरदार जसवन्त सिंह प्रगतिशील लेखक कहलाते हैं। लेकिन प्रगति यदि 'भाभीवाद' और 'प्रियावाद' है तो वह कैसी प्रगति है, यह हमारी समझ में नहीं आता।

दोब्रोत्युवस्की और बेलिन्स्की के युग में जो कला का रूप था, वह प्लेखेनॉफ के युग में बदल चुका था। यहां मैं साफ कर दूं कि लेनिन ने जो प्लेखेनॉफ के विषय में लिखा है, मैं उससे पूरी तरह सहमत हूं, भले ही मुझे मार्क्स का एंगेल्स को लिखा हुआ वह पत्र याद है जिसमें उसने कहा है कि कला का एक स्थायी मूल्य भी होता है।

हाल में जो माओत्सेतुंग ने कला और रूप के बारे में लेख लिखा है, उससे वह भ्रम भी दूर हो जाता है जो ल्यूकस को हुआ था। ल्यूकस की वर्गचेतना ने वही किया जो बुर्जुआ देशों में लाइसेन्को के विरुद्ध हुआ है। काँड्वेल ने इस सुपरमैन थियरी की जैसी काट की है वह 'सन्त-वादियों' की हल्की चप्पलों को युग के सर्वहारा के भारी बूटों के सामने नहीं ठहरने देंगी।

तो सरदार की कहानी इस दृष्टि से देखने पर भले ही बाह्य रूप से इव्सेनियन प्रतीत हो, किन्तु मैं उसे हास्य की एक विकृति मात्र कहूंगा। क्योंकि यदि आप कहानी के अन्तिम अक्षर से प्रारम्भ तक पलट कर लिखते जाएं, तो आपको 'प्रयोगवाद' का नया स्थिर रूप मिल जाएगा।

मैंने, कुछ दिन हुए, राष्ट्रीय जागरण का जो रूप देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के इन्द्रदेव और भूतनाथ के संघर्ष में दिखाया था उसीसे स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि नई कहानी का रूप क्या होना है। मैं बहुत दिन से कहता रहा हूं कि हमें प्रेमचन्द की विरासत चाहिए, वही हमारे आन्दोलन का रूप आगे बढ़ाएगी। यहां मैं आपको बता दूं कि कला में वस्तु-विषय की समानता से प्रायः सार्वकालिक और सार्व-

जनीन रूप से हमारी करोड़-करोड़ मजदूर-किसान जनता को एक जैसा रूप मिलता है ।

मुझे जो चीज बहुत पसन्द है वह यह कि प्रेमचन्द और गोर्की की मूछें बिल्कुल एक-सी ही लगती हैं । महामानव निराला यदि मूछें रखते और ज़रा सौम्य आकृति से फोटो खिचाते, तो शायद वे भी उतने ही प्रभावशाली लगते । वैसे उनका व्यक्तित्व वे ही लोग जानते हैं जिन्होंने उनके पास रहकर देखा है कि वे कितने जोर की चपत लगाते हैं । पंजा लड़ाने में तो साहित्य-क्षेत्र में उनका कोई मुकाबला ही क्या करेगा । बे दुलमुल, स्त्रियों की तरह बनने वाले, सरकारी नौकर जो कि ऊर्ध्व-चेतन की आड़ में एक हाथ में कामशास्त्र और दूसरे में दर्शनशास्त्र लिए फिरते हैं, वे यह सब क्या कर सकते हैं ?

मुझे इसपर याद आया कि मेरे एक मित्र हैं जो देखते भी हैं और नहीं भी देखते, और जब नहीं देखते तब देखते हैं और देखते समय नहीं देखते । किन्तु समय आ गया है कि अब यदि उद्‌जन बमों का साम्राज्य-वादियों को इतना घमण्ड है तो वे समझ लें कि जनशक्तियों के पास भी काफी बम हैं, जो इन शोषकों को दूर से ही खत्म कर सकते हैं ।

और हमारी भारतीय जनता, विशेषकर हमारे हिन्दी क्षेत्र की, यह पुकार-पुकारकर कहना चाहती है कि कांग्रेस को वह वोट देती है तो इसका यह मतलब नहीं कि वह प्रगतिशील ताकतों की तरफ नहीं है । वह है इधर ही, भले ही आज वह कुछ हद तक प्रतिक्रियावादियों की असलियत खोल देने को उन्हें समय दे रही है । केरल का सबक काफी है कि वह भारतीय च्याङ्ग काई शेकों का तख्ता हिला डाले । वही बताता है कि रूसी साहित्य इसलिए नहीं कि उसकी आलोचना की जाए । हमें तो उससे कुछ सीखना है ।

सरदार की कहानी में मुझे यह तार मिला । किन्तु फिर भी उनका मित्र होने के नाते मैं कहूँगा कि यशपाल की यौन प्रवृत्ति (मेरा मतलब उनके साहित्य की प्रवृत्ति से है) अभी उनमें बाकी है । उसे दूर होना

है। कला जनता में पलती है, जिसे स्तालिन ने प्रगट किया था। यह और बात है कि ख्रुश्चेव और अन्य सोवियत नेताओं ने इसके बारे में बूर्ज्वा संस्कारों के कारण गड़बड़ पैदा की है। उसका इलिया एहरेनबुर्ग ने स्पष्ट उत्तर दिया भी है कि संस्कार नाम की मनुष्य में कोई चीज़ नहीं होती, केवल समाज-संसर्ग होता है। और क्रान्ति के लिए आवश्यक है कि हम अपने दिलों को टटोलें प्रतिक्रियावादियों के भेजों को टटोलें। सरदार की कहानी उसी ओर इंगित करती है।

—रणछोड़दास, तुलसीदास के आंगन की कुटी, लखनऊ

पांच

अप्रैल

पूना के एक पत्र में छपा—

यूरोप का सांस्कृतिक ह्रास हमारे सामने यह प्रश्न लाकर खड़ा करता है कि व्यक्ति का विकास किस प्रकार हो। यह सर्वनाशी दानव जो यांत्रिकता में व्यक्तित्व को घोटकर एकदम सारे विकास को वनौकस यूथों की आदिम बर्बरता की ओर लौटा कर ले जाना चाहता है, जो दमन, आतंक और विद्रूप की सहायता से व्यक्ति की लघुता को ही उसकी स्थायी चेतना बनाकर खरल में डालकर घोटते रहना चाहता है, वह केवल सरकारी मोल बिके चेतनाहीन लेखकों या उन केन्द्रच्युत रेखाओं जैसे मानसों को सन्तोष दे सकता है, जो हर प्रकार से इस बर्बरता को सहायता देकर मूल प्रश्न को दूर रखना चाहता है। हम लोग जो कि गुट नहीं बनाते, यह कह सकते हैं कि सारी साहित्यिक चेतना हमारे पास है, और वह आगे ले जाने वाली है। जो इसे नहीं मानता वह गलत है और उसी दृष्टिकोण को मानने वाला है जो संघ का रूप धारण करके नए आग्रामों को रोकता है।

सरदार जसवन्त सिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' को लेकर जो गलत प्रचार किए जा रहे हैं वे सत्य से कितनी दूर हैं इसे पढ़कर आश्चर्य

होता है। इलियट जैसे भोज और हिन्दी में उसके गंगू की बात में क्या कहूं, परन्तु अखाड़िए लोग उस कहानी को जो रूप दे रहे हैं वह वास्तव में विचित्र है। कहानी अपने आप में पूर्ण है, उसका अपना त्रिकोणात्मक आयतन है, जो भले ही कोर्स की ही किताबें पढ़ाने वाले या सरकारी इनामों पर चलने वाले, या गुटबन्दी करके सरकारी पदों पर किसी तरह घुस बैठने वाले लोगों को पसन्द न आए, लेकिन उसमें तीखा व्यंग्य है।

कला नया जीवन चाहती है। सरदार की पुरानी दोतल में नई शराब है। साधारणीकरण का अब पुराना राग अलापना व्यर्थ है। लेखक ही ऐसी मुश्किल क्यों उठाए ? नए युग में पाठक को ही अब लेखक की कृति से साधारणीकरण करना होगा, अन्यथा वही भाव, वही चित्रण लेकर लेखक क्या बंधा बैठा रहेगा ? पाठक को भी अपना विकास करना पड़ेगा। सरदार की कहानी में यद्यपि इसका पूर्ण निर्वाह नहीं है, फिर भी अपनी सारी कमजोरियों के बावजूद, वह ध्यान देने लायक है। उसे लोग चाहे गिराना चाहें, परन्तु, हम जो गुटबन्दी को स्वीकार नहीं करते, इस झगड़े से दूर रहकर ही साहित्य की सत्परम्परा का निर्वाह करना चाहते हैं।

—राजेश्वर गुरुनाथ तबक्ले, इलाहाबाद

छः

जबलपुर के एक पत्र में छपा—

अभी आपका पत्र मिला। सरदार की कहानी पढ़ी। उस समय मेरे साथ वहां अन्य कई प्रतिष्ठित साहित्यिक भी थे। कहानी की चर्चा चल पड़ी।

श्री क्षेमराज हिन्दी के गण्यमान्य ऋषि हैं। उनके विषय में गांधीजी के एक परम सुहृद् ने कहा भी है कि जब-जब क्षेमराजजी की कहानी पढ़ी तब-तब उन्हें यही लगा कि तॉल्सतॉय की आत्मा बोल रही है। तो क्षेमराजजी से इस कहानी पर बातचीत हुई। उन्होंने पढ़ी तो नहीं

थी, पर उनकी राय का साहित्य में मान होना चाहिए। मैंने उसी समय उसे लिख लिया। क्योंकि यह राय क्या, दर्शनशास्त्र का एक टुकड़ा है। आपको भेजता हूँ—

‘कहानी क्यों लिखी गई ? क्योंकि शायद कहने को कुछ था नहीं। होता तो वह लिखी न गई होती। कलाकार अभिव्यक्ति कब करता है ? जब उसका व्यक्तित्व युद्ध चाहता है। युद्ध ? किससे ? औरों से ? नहीं। और यानी आप ! आपका यहां तात्पर्य किससे होगा ? उस शान्ति से जो मनुष्य में होते हुए भी नहीं है। सरदार जसवन्तसिंह ने कहानी लिखी है और जो मैं कहूँ नहीं लिखी है, तो ? लिखते सब हैं, मगर लिखता कौन है ? सरदार नहीं लिखते। मैं नहीं लिखता। कला अभिव्यक्ति नहीं दुराव है। किससे दुराव ? गति से। तो गति ही जब फल हो तो कोई करे भी क्या !’

मेरी अपनी राय यह है कि कहानी ठीक ही है। और अच्छी होती तो मैं उसे और श्रेष्ठ कहता। वैसे ठीक है। प्रेमचन्द के बाद के अकाल के नए पौधों में उसका विशेष स्थान है।

—परशुराम त्रिपाठी, बनारस

सात

बनारस के एक पत्र में छपा—

आपके पत्र में सरदार जसवन्त सिंह की ‘कुत्ते की दुम और शैतान’ छपी। मैंने यही प्रयत्न किया कि उसे भी उस सारे साहित्य जैसा समझूँ जो नित्य कूड़े-कर्कट के रूप में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में छप रहा है, परन्तु उसकी इतनी चर्चा हुई कि मुझे बाध्य होकर पढ़ना पड़ा। किन्तु पढ़कर इतनी अधिक निराशा हुई जितनी शायद बिना पढ़े हुए साहित्य के प्रति भी नहीं है।

क्यों लिखते हैं लोग ? कोई उद्देश्य है सामने ? जनता को मिलता है कुछ ? लेखक का व्यक्तित्व किन साधनाओं में से निकला है जो वह

कुन्दन दे सकेगा ? आरामकुर्सियों पर बैठकर कहानियां लिखना फैशन है तो जनता से सम्पर्क ही कहाँ है ?

मैं कुत्सित समाजशास्त्रियों की बात नहीं करूंगा, क्योंकि वे हर चीज को रूस का चश्मा लगाकर देखते हैं। इतना ही कहूंगा कि उस कहानी में नयापन है, मगर उसमें गहराई की कमी है, और इसीलिए उसमें वह चेष्टा नहीं है जो हमें आगे ले जाए, उदात्त बना सके। और मैं क्या कहूँ ?

—श्रीधर सिंह पाण्डेय, आगरा

आठ

दिल्ली के एक पत्र में छपा—

किसी कहानी की कितनी प्रशंसा की जाए यह एक विचारणीय प्रश्न है।

हिन्दी में यह रोग हो गया है कि लोग या तो साहित्य पढ़ते नहीं या पढ़ते हैं तो फिर अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग छेड़ देते हैं। मैं उनमें नहीं, क्योंकि मुझे राग से ज्यादा डफली प्यारी है।

अभी आचार्य भगवतप्रसाद जी शर्मा से वर्तमान साहित्य पर बातें हुई थीं। वे उसी समय राष्ट्रपति से मिलकर आए थे। उन्होंने हंसकर कहा कि 'गुरुदेव कहा करते थे कि नए लेखकों को उनकी राह पर स्वतंत्र छोड़ना चाहिए, क्योंकि बुद्धि किसी एक पीढ़ी की नहीं होती। गुरुदेव महामानव थे, और उनकी बात आज क्या सदैव लागू होगी। सरदार जसवन्तसिंह में प्रतिभा है, तो वे अवश्य बढ़ेंगे, उन्हें कौन रोक सकता है।'।

परन्तु मैं यही कहूंगा कि कहानी कठिन कला की वस्तु है। किसी भी रचना को इतना तूल देना ठीक नहीं। आजकल हिन्दी में डाक्टरों की भरमार है, और जो चाहे कुछ भी लिखने लगता है। हमें मर्यादा से काम लेना चाहिए। अभी एक सज्जन का लेख पढ़ा कि कहानी बहुत रद्दी है, मगर मैं ऐसा नहीं कहूंगा। विद्वेष की दृष्टि से नीचे गिराना ही ध्येय हो

तो सरदार ही क्या कालिदास को भी गिराया जा सकता है।

कहानी मैंने सरसरी निगाह से पढ़ ली है, शास्त्रीय दृष्टि से नहीं। उस दृष्टि से पढ़कर उसके बारे में फिर लिखूंगा। आपका पत्र जिस लगन से साहित्य की सेवा कर रहा है, उसका अभिनन्दन करता हूँ, मेरी ओर से सरदार जसवन्तसिंह वधाई स्वीकार करें।

—डॉ० रघुनन्दन सिंह, पटना

पुनश्च: इस कहानी में सर्वोदय विचारधारा का जो प्रभाव मिल रहा है वह मुझे हिन्दी में एक नए मोड़ की तरफ ले जा रहा है। मेरा विचार हो रहा है कि नई कहानी पर मैं एक निबन्धमाला लिखूँ और उसमें विभिन्न विचारधाराओं का सांगोपांग विवेचन करूँ। हम सब शायद एक ही लक्ष्य की ओर खिंच रहे हों। हमें भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक के काव्यरूपों का अध्ययन करके उनका पाश्चात्य चिन्तन से तुलनात्मक अध्ययन करना है। आप लिखें।

—डा० र० सि०

नौ

जून

इलाहाबाद के उसी पत्र में छपा—

सम्पादकीय

हमारे पत्र में इधर जसवन्तसिंह की जो 'कुत्ते की दुम और शैतान' कहानी छपी थी उसके सम्बन्ध में हमें काफी गण्यमान्य लेखकों की सम्मतियाँ प्राप्त हुईं। वे सब हमने ज्यों की त्यों छाप भी दी थीं।

हमारा सिद्धान्त यह है कि हम हर लेखक की विचार-स्वतन्त्रता का सम्मान करते हैं और यही हमारे जीवनदर्शन का मूलभूत आधार है। किसी कहानी की इतनी चर्चा हो, और वह भी जो हमारे पत्र में छपी हो, यह स्पष्ट प्रगट करता है कि हमारा पत्र कहानी को निरन्तर आगे ले जा रहा है। शीघ्र ही हिन्दी में भी तॉलस्टॉय, गोर्की, मोपासां और

बाल्जाक जैसे लेखकों का उदय होगा। हमारे एक मित्र का तो यहां तक कहना है कि सरदार में हरिश्चन्द्र की चुटीली चोट है, तो मायकोवस्की की कसक। सरदार सिनेमा क्षेत्र में भी खूब लिखते हैं। अभी हाल में उनका एक कहानी संग्रह उज्ज्वल भाषा में छपना शुरू हुआ है, इससे हिंदी का नाम बढ़ेगा।

सरदार साहब बहुत लिखते हैं और इसीलिए मेरी अपनी राय है कि वे कुछ ढीले पड़ जाते हैं। उनकी यह कहानी अच्छी बन पड़ी है। वैसे कमियां इसमें भी हैं, पर मैं कहूंगा अब वे शायद ही ऐसी कहानी लिख पाएं। शायद ही क्यों, बल्कि यही कहना ठीक होगा कि नहीं ही लिख पाएंगे। वे वैयक्तिक समस्याओं में समाज के संघर्षों को भूलते जा रहे हैं और इससे उनको 'मुक्ति' या 'मोक्ष' भले ही मिल जाए, किन्तु कला का निश्चय ही ह्रास हो जाएगा।

दस

जुलाई

इलाहाबाद के उसी पत्र में छपा—

सम्पादकीय

गत अंक छप चुका तब सरदार जसवन्तसिंह का पत्र आया। उसे नीचे दे रहे हैं। आशा है इससे पाठकों को नई रोशनी मिलेगी और आलोचकों को भी।

प्रिय भाई,

जनवरी में आपका एक पत्र कहानी के लिए आया था। मैं उस समय अपनी फिल्म के एक जरूरी काम से लोणावाला जा रहा था। मेरे क्लर्क उस दिन आए नहीं थे, इसलिए मैं अपनी श्रीमती जी से कह गया था कि क्लर्क से कहकर मेज़ पर रखी कहानी आपको भिजवा दें।

दोपहर के करीब बारह बजे मेरे क्लर्क जब मेरे घर पहुंचे तो श्रीमतीजी ने उन्हें कहानी भेजने की बात बताई। दुर्भाग्य से उन्होंने मेरी एक

अधूरी कहानी आपको भेज दी। परंतु वह कहानी भी काफी प्रभावोत्पादक रही !

मेरे पास कई पत्र आए हैं जिनमें कई युवकों ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक वे प्रसिद्ध नहीं हो जाएंगे तब तक विवाह या कोर्टशिप भी नहीं करेंगे। मश्क जी की राय से मैंने इस कहानी का ध्वनिनाटक रेडियो में भेजा, वह स्वीकृत हो गया, और अब इसीको बढ़ाकर उपन्यास लिखा, वह भी स्वीकृत हो गया। प्रकाशक महोदय ने कोर्स में लगवाने के लिए इसका एक संक्षिप्त संस्करण भी मुझसे तैयार करवाया है।

मैं कह सकता हूं, यह कहानी विश्व साहित्य में रखी जा सकती है। हिन्दी में आलोचक अच्छे पढ़े-लिखे लोग नहीं, वर्ना गुलेरी जी की तरह मुझे यही कहानी अमर करने को काफी थी। हां, मैं बड़ा आभारी होऊंगा यदि मेरी उस अधूरी कहानी का शेषांश भी छाप दें। शेषांश साथ में ही नत्थी है।

भवदीय,

—सरदार जसवन्त सिंह

शेषांश—

उसका जी किया वह फूट-फूटकर रो उठे। अब उसका सहारा ही कौन था ? क्या यही था स्त्री का प्रेम ? उसके मन में आ रहा था कि वह कमरे में जाकर अपनी लिखी हुई कापियों को फाड़फूड़ कर फेंक दे।

धीरे-धीरे चारों तरफ सन्नाटा छा गया। रात का एकाकी विरही पक्षी पुकार उठा। आवाज चंचल के रोम-रोम में बिध गई। उसे लगा आस्मान नीले पहलवान की तरह पेड़ों का काला जांघिया पहने भील में उतर आया था। हवा लंगड़ाती हुई सन्नाटे की बैसाखियों पर चल रही थी। आलीशान इमारत में रहने वाले रईस की तरह मुफलिस-दिल चांद निकल आया था।

दूर कहीं घण्टे बजे.....एक.....दो.....तीन....! पांवों की चाप

सुनकर उसने मुड़कर देखा । कौन ? सुषमा ! घण्टे बज रहे थे....दस....
ग्यारह.....बारह ! कलाकार स्नेह और सौन्दर्य की भुजाओं में सिसक
उठा ।

ग्यारह

अगस्त

किताब मन्दिर प्रकाशन के अपने पत्र में छपा—

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक

किताब मन्दिर प्रकाशन

शाखा : बम्बई, मदरास, कलकत्ता, पटना, जबलपुर,
इन्दौर, मैसूर, अजमेर, दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर

की नई भेंट

हिन्दी के चोटी के कलाकार, सरदार जसवंतसिंह का नया
कहानी संग्रह—‘कुत्ते की दुम और शैतान’ तथा अन्य कहानियां

यह प्रचार का युग है अतः हम कुछ न कहकर हिन्दी के गण्यमान्य
लेखकों की रायें उद्धृत करते हैं, जिनसे पाठकों को ज्ञात होगा कि शायद
ही एक कहानी लिखकर किसी लेखक को इतना यश मिला हो—

‘कुत्ते की दुम और शैतान’ पढ़कर बड़ी राहत मिली । कहानी का
अन्त बहुत ही जानदार हुआ है ।.....मैं बड़े सन्तोष के साथ स्वीकार
करूंगा कि सरदार के कथानक में एक व्यवस्था है ।.....जहां तक
वातावरणपरक कौशल है, उसमें लॉर्ड डन्सनी से कम ताकत नहीं है ।
वह विन दूर नहीं है जब.....लोग यह देखेंगे कि सरदार की कहानी
उन कहानियों में से थी जिसने नये रास्ते की तरफ मोड़ लिया ।’

—वामन पाण्डुरंग चरमरकर, पूना । यशस्वी आलोचक, दिग्गज
विद्वान् । मराठी और हिन्दी पर समान अधिकार से राय देने की

शक्ति रखने वाले हिन्दी के शीर्षस्थ विचारकों में से एक ।

‘सरदार की कहानी पर ध्यान देना आवश्यक है ।’

—जगभूषण मतवाला, नागपुर । प्रसिद्ध उदीयमान कहानीकार जिनमें प्रेमचन्द और चौसर की सम्मिलित प्रतिभा है । इन्हें पुरानी पीढ़ी का नए कलेवर में विशेषांक भी कहा जा सकता है ।

एक अप्रसिद्ध साधारण पाठिका लिखती हैं—और हमारे प्रकाशन ने सदैव लोकमत को बड़ा महत्व दिया है, इंग्लैण्ड-अमेरिका में तो सुव्यवस्थित प्रकाशन संस्थाएं ऐसा करती ही हैं—

‘गस्ताव फ्लॉबेअर, डिकेन्स और दोस्तोएवस्की को पढ़ने वाले लोग कभी भी बिना तर्क के कैसे स्वीकार कर लेंगे कि आज की कहानी का आयाम पहले से भी छोटा हो गया है । सरदार की कहानी की इनसे तुलना करने पर ही कला का दायित्व प्रगट होता है ।’

मार्क्सवादी आलोचना के कर्णधार, हिन्दी की प्रखर खड्ग-प्रतिभा, श्री रणछोड़दास, लखनऊ कहते हैं—

“ ‘क्रान्ति के लिए आवश्यक है कि हम अपने दिलों को न टटोलें, प्रतिक्रियावादियों के भेजे टटोलें ।’ सरदार की कहानी उसी ओर इंगित करती है ।’

और—

‘कुत्ते की दुम और शैतान को लेकर जो गलत प्रचार किए जा रहे हैं, वे सत्य से कितने दूर हैं इसे पढ़कर आश्चर्य होता है ।..... कहानी अपने आप में पूर्ण है, उसका अपना त्रिकोणात्मक आयतन है ।..... उसमें तीखा व्यंग्य है ।..... सरदार की पुरानी बोतल में नई शराब है । उसे लोग गिराना चाहें..... परन्तु हम..... साहित्य की सत्परम्परा का निर्वाह करना चाहते हैं ।’

—राजेश्वर गुरुनाथ तवक्कले, इलाहाबाद । नई समीक्षा की नींव रखने वाले मनस्वी गद्य लेखक, जिनकी कलम में जादू है या गजब की छड़ी ।

‘सरदार नहीं लिखते । मैं नहीं लिखता ।’

—श्री क्षेमराज, हिन्दी के गण्यमान्य ऋषि । तॉलस्तॉय की आत्मा के बिम्ब । परिचय की आपको आवश्यकता नहीं ।

‘प्रेमचन्द के बाद के अकाल के नए पौधों में उसका विशेष स्थान है ।’

—परशुराम त्रिपाठी, बनारस । नई कलम के सिद्धहस्त लेखक ।

‘मुझे बाध्य होकर पढ़ना पड़ा ।..... इस कहानी में नयापन है... और मैं क्या कहूँ ?’

—श्रीधरसिंह पाण्डेय, आगरा । नए ढंग से सोचते हैं, लिखते हैं । बात में तथ्य हो इसीपर जान देते हैं ।

‘सरदार जसवन्तसिंह में प्रतिभा है, तो वे अवश्य बढ़ेंगे, उन्हें कौन रोक सकता है ?’

—आचार्य भगवतप्रसाद शर्मा । हिन्दी के भीष्म । इनको कौन नहीं जानता ! गुरुदेव ने इनकी प्रतिभा को स्वीकार किया था ।

‘विद्वेष की दृष्टि से नीचे गिराना ही ध्येय हो तो सरदार ही क्या, कालिदास को भी नीचे गिराया जा सकता है ।... मेरी ओर से सरदार जसवन्तसिंह बधाई स्वीकार करें ।’

—डॉ० रघुनन्दनसिंह, पटना । शोध क्षेत्र में कोलम्बस ।

जो इस संग्रह को नहीं पढ़ता—खरीदकर—(क्योंकि हमें हिन्दी में यह राष्ट्रीय पैमाने पर आन्दोलन करना है कि निजी पुस्तकालय बनाना भी सत्साहित्य के सिरजन के बराबर है) वह विश्व साहित्य की प्रगति के साथ नहीं बढ़ सकता । आज ही ऑर्डर बुक कराइए.....

पृष्ठ संख्या १६२, मूल्य छह रुपए और पचास नए पैसे ।

बारह

अक्टूबर

दिल्ली की एक अंग्रेजी पत्रिका में छपा—

If I were to name something mentionable in modern Hindi literature, I, without the least delay will, put before the Western readers, the remarkable and unique short story of Sardar Jaswant Singh—'Kutte ki dum our Shaitan'. Here you find one whole tradition that...

—Sr. J. Siene.

अनुवाद : यदि मुझसे पूछा जाए कि वर्तमान हिन्दी साहित्य में उल्लेखनीय कौन-सी रचना है, तो मैं अविलम्ब पश्चिम देशीय पाठक के सामने सरदार जसवन्तसिंह की 'कुत्ते की दुम और शैतान' नामक ज़बर्दस्त और अपने ढंग की एक ही कहानी रखूंगा। यहां आप एक पूरी परम्परा पाएंगे जो.....

—एस-आर० जे० सीने

तेरह

(नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून तक कहीं कुछ नहीं छपा)

जुलाई

काशी के एक पत्र में तीन पुस्तकों की आलोचना प्रकाशित हुई। उनमें महत्वपूर्ण बातें ये थीं जिन्हें यहां उद्धृत किया जाता है—

'नए लेखकों में सरदार जसवन्तसिंह का भी कहानी के क्षेत्र में उल्लेख किया जा सकता है।'—'हिन्दी साहित्य का विकास'; लेखक : आचार्य भगवत्प्रसाद शर्मा और डॉ० रघुनन्दनसिंह। पृ० ३६८, फुटनोट नम्बर ३.'

‘कहानियों में सरदार जसवन्तसिंह की ‘कुत्ते की दुम और शैतान’ उल्लेखनीय है, जिसकी एस-आर० जे० सीने जैसे हिन्दी के प्रेमी किसी फ्रेंच साहित्यकार तक ने प्रशंसा की है ।’—‘हिन्दी कहानी : नए आयाम और प्रमाण; लेखक : राजेश्वर गुरुनाथ तवक्कले, पृ० ४८१ ।’

‘नए साहित्य में सरदार जसवन्तसिंह की कविता ‘कुत्ते की दुम और शैतान’ काव्य में नई ओर पग बढ़ाती है ।’—‘नया साहित्य—नई समीक्षा’, लेखक : रामदुलारे विजयवर्गीय । प्राध्यापक,.....। पृ० सं० ८७२ ।’

पंच परमेश्वर | २

इस कहानी के सम्बन्ध में—

यह गांव की नहीं शहर की कहानी है। जब यह छपी तो कुछ लोगों ने इसे अद्भुत कहा। जिन आदमियों की राय को मैं ईमानदार मानता हूं और जिनकी कद्र करता हूं, उनमें श्री यशपाल थे। परंतु फिर इसका नाम लुप्त हो गया और कहा गया कि प्रेमचंद के बाद ऐसी समस्याओं पर लिखा ही नहीं गया। और बातें छोड़कर मैं अब एक बात कहूं।

जन-जीवन का कौन-सा रूप है जो आज हमें खींचता है ! समस्या का हल या यथार्थ का चित्रण ! मैं इन दोनों को युगपरक सत्य मानता हूं, परंतु इन्हें साहित्य का सब कुछ नहीं मानता, क्योंकि साहित्य का सृजन एक और भी व्यापक तत्त्व चाहता है। वह तत्त्व है भाव चित्रण—प्राचीन शास्त्रियों के शब्दों में, और मेरी व्याख्या में मानवीयता का व्यापक रूप। इसी तत्त्व को मैंने निरंतर विकसित किया है। प्रेमचंद में इसका अभाव था, परंतु उतना नहीं जितना वृन्दावनलाल वर्मा में। हिंदी में मन के पक्ष को या तो प्रयोगवादियों की दुरुहता समझा जाता है, या नीरस, अशक्त

वर्णन को यथार्थ कह दिया जाता । इस शैली को पसंद नहीं करता और यही कारण है कि पंच परमेश्वर का अपना स्थान है ।

एक कुत्सित समाजशास्त्री ने कहा था—पंच परमेश्वर में जनता का मजाक उड़ाया गया है ।—क्या ऐसे बुद्धिमानों को भी उत्तर देने की आवश्यकता है ?

साहित्य का सत्य वस्तु का सत्य मूलतः होता है, और कलाकार का सत्य यदि उसपर हावी हो जाता है, तो उसमें चित्रित मनुष्य का रूप नष्ट हो जाता है । इस रेखा को मैंने सदैव रखा है अपने सामने और इसीलिए कुछ अधिक पाठकों ने यह कहा है, मेरे पात्र उन्हें रोकते हैं, जब कि वे चाहते हैं उनपर से फिसल जाना, क्योंकि ऐसी सतही तौर पर लिखी चीजें उनके लघुत्व से मेल खाती हैं ।

मेरा मत यह है कि पात्र जब सामने आए तो ऐसा लगना चाहिए जैसे ज़िंदगी में एक नए आदमी से मुलाकात हो गई । उसे किस नज़र से आप देखना चाहते हैं ? मैं तो संपूर्ण मानव को देखना ही कला के दृष्टिकोण से श्रेष्ठ समझता हूँ ।

आज व्यंग्य हमारे सामने आया है, तो व्यंग्य कैसा हो, किस-पर हो ! जब लेखक अपने पात्र पर व्यंग्य करता है अपनी ओर से, तब वह बहुत ही निकृष्ट कला को जन्म देता है, और यह आज के कुछ नए लेखकों की हीनत्व की भावना का फल है, परंतु वस्तुतः व्यंग्य परिस्थिति में से आना चाहिए, जिसमें लेखक जितना परोक्ष रहे उतना ही अच्छा है ।

पंच परमेश्वर इसीलिए एक पसंद आने वाली कहानी है । इस तरह की मैंने और भी कहानियाँ लिखी हैं—भय, तिरिया इत्यादि और मेरी समझ में कोई भी एक दूसरी से कम नहीं है ।

हम वर्ग नहीं देखते, वर्ग में मानव देखते हैं बर्गों का महत्व

हमारे लिए इसीलिए है कि मानव वर्गों में है । वर्ग इसलिए देखते हैं कि मानव के जीवन का सत्य वर्ग-विषमता में आवद्ध हो गया है, परंतु हम यह नहीं मानते कि वर्ग में मनुष्य यांत्रिक हो जाता है । मनुष्य मनुष्य ही रहता है और पंच परमेश्वर इसीका ज्वलंत उदाहरण है ।

पंच परमेश्वर

चन्दा ने दालान में खड़े होकर आवाज देने के लिए मुंह खोला पर एकाएक साहस नहीं हुआ। कोठे के भीतर खांसने की आवाज आई। अभी अंधेरा ही था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। गधे भी भीतर की तरफ टाट बांधकर बनाई हुई छत के नीचे कान खड़े किए हुए बिल्कुल नीरव खड़े थे। खपरैल पर लाल-सी झलक थी, देखकर ही लगता था जैसे सब कुछ बहुत ठंडा हो गया था, जैसे स्वयं बर्फ हो। गली की दूसरी तरफ मस्जिद में मुल्ला ने अजान की बांग दी। चन्दा कुछ देर खड़ा रहा, फिर उसने धीरे से कहा—भैया !

बिस्तर में कन्हाई कुलबुलाया, अपनी अच्छी वाली आंख को मींड़ा। उसे क्या मालूम न था ? फिर भी भारी गले से पड़ा-पड़ा बोला—कौन है ?—और कहते में वह स्वयं रुक गया। नहीं जानता तो क्या रात को दरवाजे खुले छोड़कर सोता ? उसे खूब पता था कि कल सूरज-नारायण चढ़े न चढ़े मगर चन्दा लगी भोर आकर बिसुरेगा।

दोनों भाई असमंजस में थे। इसी समय चौधरी मुरली की बूढ़ी खांसी सड़क पर सुनाई दी। चन्दा की जान में जान आई। चौधरी को बहुत सुबह ही उठ जाने की टेव थी। वास्तव में टेव-फेव कुछ नहीं। दिन में हुक्का गुड़गुड़ाने से रात को ठसका सताता था और फिर उल्लू की तरह रात को जागकर वह सुबह ही बुलबुल की तरह जग जाते और

लठिया ठनकाते सड़क से गली, गली से सड़क पर चक्कर मारते रहते ।

इतनी भोर को जो कन्हाई का द्वार खुला देखा, और फिर एक आदमी भी, तो पुकारकर कहा—को है रे ?

चन्दा को डूबते में सहारा मिला । लपककर पैर पकड़ लिए ।

‘क्यों ? रोता क्यों है ?’ चौधरी ने अचकचाकर पूछा, ‘रम्पी कैसी है ?’

‘कहां है, चौधरी दादा’, चन्दा ने रोते-रोते हिचकी लेकर कहा—
‘रात को ही चल बसी ।’

‘और तूने किसीको बुलाया भी नहीं ?’

चन्दा ने जवाब नहीं दिया । सिसकता रहा । गधे अपनी बेफिक्री से मस्ती के आलम में खड़े रहे । उनकी दृष्टि में आदमी ने ही अपना नाम उनपर थोपकर, उनका असली नाम अपने पर लागू कर लिया था ।

‘ओह ! कहां है रे कन्हाई ?’ चौधरी पंच ने अधिकार से कहा—
‘सुना तूने ? अब काहे की दुसमनी ? दुसमन तो चला गया । मट्टी से बैर करता सुहाएगा ?’

कन्हाई ने जल्दी-जल्दी धोती पर अपना रुई का पजामा चढ़ाकर, रुई का अंगरखा पहना और बिगड़ी आंख पर हाथ धरकर बाहर निकल आया । चौधरी ने फिर कहा—बिरादरी तो तब आएगी जब घर का अपना पहले लहास को छुएगा बावले । चली गई बेचारी । अब काहे को अलगाव है बेटा ? देख और क्या चाहिए ? तेरी मां थी न ?

कन्हाई ने दो पग पीछे हटकर कहा—दादा ! जे क्या कही एक ही ? किसकी मां थी ? मेरी महतारी सब कुछ थी, छिनाल नहीं थी, समझे ? अब आया है ? देखा ? कैसा लाड़ला है ? नहीं आऊंगा समझे ? बीघों का छोरा हूं तो नहीं आऊंगा ।

चौधरी ने शान्ति लाने के लिए कहा—हां-हां रे कन्हाई, तू तो बिरादरी की नाक बन गया । पंच मैं हूं कि तू ?

कन्हाई दबका । उसने कहा—तो मैंने कुछ अगल बात कही है

दादा ? उसने मेरे खिलाफ क्या नहीं किया ? मैंने हड़डी-हड़डी करके उसके चन्दा को ज्वान बना दिया । ताऊ मरे थे तब मेरे बाप की आंख फूट गई थी जो धरेजा किया तो भाभी से ही और अपनी व्याहता को छोड़ दिया । रिसा-रिसा के मारा है मेरी मां को । वह तो मैं कहूँ, मैंने फिर भी उसे अपनी मां के बरोबर रखा । तुम तो सब अनजान बन गए ऐसे ! घर छोड़ दिया । अपनी मेहनत के बल पै यह घर नया बनाया है । अपना गधा है । जब सपूती का सुलच्छना बड़ा हुआ तो कैसी आंखें फेर गई ? वह दिन क्या मैं भूल जाऊंगा ?

चौधरी निरुत्तर हो गए । फिर भी कहा—पर बेटा, तेरे बाप की बहू थी, यह तेरे बाप का ही बेटा है, तेरा भइया है, दस आदमी नाम धरेंगे । गधा लाद के बजार से दूकान के लिए सब्जी लाता है । आज वह न सही; अनजाना करके लगा दे कन्धा, तेरा जस तेरे हाथ में है । कोई नहीं छूटता, अपनी-अपनी करनी सब भोगते हैं...

कन्हाई निरुत्तर हो गया । चन्दा ने उसके पैर पकड़कर पांवों पर सिर रख दिया, और रोने लगा ।

‘मेरी लाज तो तुम्हारे हाथ है भैया ! पार लगाओ, डुबा दो । घर तोऽ तुम्हारा, मैं तोऽ तुम्हारा गधा । कान पकड़ के चाहे इधर कर दो चाहे उधर, पर वह तो बेचारी मर गई...’

और उसकी आंखों का पानी कन्हाई के पैरों पर गर्म-गर्म टपक गया । कन्हाई का हृदय एक बार भीतर ही भीतर घुमड़ आया ।

दोनों ने बगल के घर में घुसकर देखा—रम्पी निर्जीव पड़ी थी । हल्की चादर से उसका शरीर ढका हुआ था । न उसे ठंड लग रही थी, न भूख, न प्यास । कन्हाई का हृदय एक बार रो उठा । इससे क्या बदला लेना ? एक दिन सबका यही हाल होना है, उस दिन न घर है, न बार, बस मिट्टी में मिट्टी है.....

और वह उसके पैरों पर सिर रखकर रो उठा—अम्मा...

रम्पी फुक गई। कन्हैया ने अपने हाथ से आग दी। उसके पेट का जाया न सही, बाप का बड़ा बेटा तो वही था। बिरादरी के लोगों के मुंह से वाह-वाह की आवाज़ निकल गई। कारज ऐसा किया कि कुम्हारों में काहे को होता होगा ! स्वयं चन्दा को भेजकर फूल गंगा में डलवा दिए। पाप कौन नहीं करता ? मगर हम तो उसकी गत सुधार दें। बारह बामन हो गए। और जब कन्हैया लोटकर तेरहवें दिन अपने घर आया तो ऐसा लगा जैसे अब कुछ नहीं रहा। चन्दा गधा लेकर मिट्टी डालने गया था। यही आमदनी थी आजकल। कुछ बढ़-चढ़कर ग्यारह आने रोज, सो मिट्टी के मोल पैसा आने पर मिट्टी के ही मोल चला जाता। गेहूं की जगह बाजरा-चना सस्ता था। सब वही खाते थे और यही सबसे अधिक सुलभ था। चन्दा के पास वास्तव में कुछ नहीं था। रम्पी ने अपना पति मरने पर देवर किया। देवर की पुरानी गिरस्ती तोड़ दी क्योंकि वह चटोरी थी और जलन से सदा उसकी छाती फटती रहती। वह किसीके क्या काम आती ? छोड़ा तो है चन्दा ! उसके पास बस दो साठ-साठ रुपयों के गधे ही तो हैं। पुराना अपना घर गिरवी रखा है और अब शायद छूट भी नहीं सकता। किराये का मकान लेके रह रही थी छल्लो !

कन्हैया का हृदय विक्षोभ से भर गया। भीतर कोठे में घुसकर एक आंख से ढूँढ़कर आंखों पर हरा चश्मा लगा लिया, ताकि आंखों की खोट बाजार वाले न परख लें। पूछने पर कन्हैया कहता—दुख रही हैं, दुख,—और जवानों से कहता—स्कूल की लौंडियां देखने को पर्दा डाला है, पर्दा।—सब सुनते और हंसते। उसके बारे में कई कहानियां थीं कि वह एक प्रोफेसर के यहां नौकर था। जिसकी बीवी जबान थी और काम से जी चुराती थी। उसने कन्हैया से खाना पकाने को कहा तो कन्हैया ने अपनी नीची जाति का फायदा उठाने को धर्म की दुहाई दी। बीवी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी थी। उसने एक नहीं मानी। तब वह नौकरी छोड़ आया।

उसके बाद भटक-भटकाकर सब्जी की दूकान की और वह चल निकली कि कन्हैया शौकिया ही एक-दो गधे रखने लगा, बस्ती में लादने के लिए किराए पर चलाने लगा ।

कन्हैया ऊबकर दूकान पर जा बैठा । दिनभर उसका जी नहीं लगा । आज उसे फिर से घर भरने की याद आने लगी । चन्दा बाईस वर्ष का हो गया । अचानक ही उसे उसपर दया भाव उत्पन्न होता हुआ दिखाई दिया । अब तो सचमुच बीच की फांस हट गई थी । कन्हैया ने अपने पैसे से कारज किया था । हृदय की उद्वेलित अवस्था भीतर के सन्तोष पर तैर उठी । कन्हैया दूकान बन्द करके घर लौट आया ।

चन्दा के ब्याह के लिए कन्हैया ने आकाश-पाताल एक कर दिया । दिल बल्लियों उछलता था । चौधरी पंच मुरली के घर जाकर जब उसने किस्सा सुनाया तो पंच उछल-उछल पड़े, खांती का ढेर लगा दिया । उनकी बहू ने बूढ़ी पलकें उठाकर देखा और गीत गाने के लिए तैयारी करने का वचन दे दिया ! आज जैसे घर भर में हर एक वस्तु में आनन्द ही आनन्द था । चन्दा का घर साफ हो गया । एक ओर मटके सजाकर रख दिए गए । अब चन्दा के बच्चे होंगे, वे दिवाली पर दिए बेचेंगे, बड़े होंगे तो चन्दा मिट्टी लादने का काम छोड़कर चाक सम्भालेगा और फिर हर फिरकन पर भटका खाकर कुल्हड़ पर कुल्हड़ उतर आएगा । चौधरी के पीछे जो बाड़ा है उसीमें भट्ट लग जाएगा ।...

चन्दा मस्त होकर गा रहा था । फागुन का सुलगता मास था । बरात बाहर गली में बैठकर जीम रही थी । भीतर औरतें गालियां गा रही थीं—

मेरी गरमी को मारी खसम देखिके रह-रह पलटा खाय...

नैकु लंहगा नीचो करले.....

कन्हैया ने रंगीन फेंटा बांधा था । आज उसके पगों में स्फूर्ति थी;

दौड़-दौड़कर इन्तजाम कर रहा था। चारों ओर कोलाहल पर प्रकाश की धुंधली किरनें तैर रही थीं। बरातियों के खच्चर, जिनपर वे चढ़कर आए थे एक ओर मूर्खों से चुपचाप खड़े थे, जैसे उन्हें मनुष्य की इस उन्मदिष्णु तृष्णा से कोई मतलब न था।

और इसी तरह एक दिन बहू ने आकर घूँघट की दो तहों में से देखते हुए कन्हाई के पैर छुए। चन्दा की गिरस्ती बस गई। और कन्हाई बगल में अपने घर में लौट गया।

चन्दा की गाड़ी जब चलने से इन्कार करने लगी तभी उसने घर से बाहर कदम रखा। पड़ोस की औरतें लुगाई के इस गुलाम को देखकर कानाफूसी करतीं, राह चलते इशारे करके हंसतीं और जब मिलतीं तो यही चर्चा चलती। चन्दा फूलों के सामने पराजित हो गया था। फूलों को देख कुम्हरिया कोई कह दे तो उसे आंखों में काजर लगाने की ज़रूरत है। वह तो पूरी जाटनी है। ज्वानी का किला है, लचकती जीभ है, फौरन तर हो जाए। चन्दा की क्या विसात ? ऐसा बस्ती में बहुत कम हुआ। दिन में चन्दा और फूलो जोर-जोर से बोलते हैं, ठहाके और किलकारियों को सुनकर पड़ोस के लोग दांतों तले उंगली दबाते हैं। कुन्जो जो प्रायः तीन व्याहता जवान छोकरियों की भैया है (और तीनों लड़कियां गालियां गाने में उसका लोहा मानती है), वह तक चौंक जाती है कि सरम-हया का तो नामोनिशान ही उठ गया।

इधर चन्दा सुबह जाता, सरे सांझ लौटता तो थका-मांदा और फूलो मुंह फुलाकर बैठ जाती। पति-पत्नी में अक्सर पैसों के पीछे भगड़ा हो जाता। चन्दा कहता—तो मैं कोई राजा नहीं हूं समझी ? तो तू पांय पसारकर बैठ और मैं दर-दर मारा-मारा फिरूं ?

कहते-कहते बीड़ी सुलगा लेता। फूलो कभी-कभी रो देती। कहती—तो तुम मुझे व्याह कर ही क्यों लाए थे ! जमाने की औरतों के तन पर बस्तर हैं, गहने हैं, यहां खाने के लाले हैं...

चन्दा काटकर कहता—ओह हो । रानी बहू ! बस्ती में सब ही ऐसे हैं । तू ही तो एक नहीं है ? भैया की तरह सब ही तो नहीं । उनका पैसा-वेली का हिसाब तो मिट्टी में गड़ता है, यहां पेट में गचकती है मेरी कमाई रांड !

फूलो कह उठती—चलो रहने दो । भांजी भांग के परबीन गाहक तुम ही तो हो । जग के नाम धरे, अपना भी देखा ? ब्याह तो मुफ्त हुआ था, नहीं तो तुम्हें कौन देता छोरी ? सैत का चन्दन, लाला तू लगाले, और घर वालों के लगाले ।

चन्दा विक्षुब्ध होकर बोला—तो जा बैठ भैया के घर ही । रोकता हूं । जमाने के मरद पड़े हैं । चली जा जहां जाना हो ।

फूलो लजाकर कहती—अरे धीरे बोलो, धीरे, तुम्हें तो ह्या-सरम कुछ भी नहीं । कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

चन्दा हंस देता । और रोज-रोज की बात या तो रोने में समाप्त होती या हंसने में और दोनों काफी देर तक एक दूसरे से बात नहीं करते लेकिन बारह बजे रात को अपने आप फिर दोस्ती हो जाती । चन्दा द्विविधा में पड़ा रहा । किन्तु कन्हाई से एक भी बात नहीं कही । मन ही मन उसके वैभव को देखकर ईर्ष्या करता । कन्हाई ने एक और गधा खरीद लिया ।

उस दिन जब वह सुबह चन्दा को घर पर समझकर खबर देने आया, चन्दा तो था नहीं, आंगन के कोने में पसीने से लथपथ, अस्त-व्यस्त कपड़ों में प्रायः खुली फूलो नाज पीस रही थी । कन्हाई ने देखा और देखता रह गया । फूलो ने मुड़कर देखा और अपना घूँघट काढ़ लिया । वक्षस्थल फिर भी जल्दी में अच्छी तरह नहीं ढंक सकी ।

कन्हाई पौरी में आ गया । और फिर पूछकर लौट आया । चन्दा ने गधा खरीदने की बात सुनी और अपनी परवशता के अवरोध में फूलो से फिर लड़ बैठा । फूलो देर तक रोती रही ।

प्रायः एक सप्ताह बीत गया । चन्दा का मकानदार उस दिन किराया

वसूल करने आया था। चन्दा ने उसे लाकर आंगन में खाट पर बिठाकर उसकी खुशामद में काफी समय लगा दिया। फूलो कुछ देर प्रतीक्षा करती रही। फिर ऊबकर बाहर सड़क के नल से डोल भरकर कन्हाई के घर में घुस गई। मालूम ही था कि कन्हाई उस समय दूकान पर रहता है घर पर नहीं।

गरीबों के घर में गुसलखाने नहीं रहते। ऊपर छत पर नहाने से बावू लोगों के लड़के छिपकर अपने ऊंचे-ऊंचे घरों से देख लेते थे, अतः वह आंगन के एक कोने में बैठकर नहाने लगी। जूँ ए तो फिर भी वीन लेगी। जब तक जेठ बाहर हैं तब तक जल्दी-जल्दी नहा ले। इसी समय न जाने कहां से कन्हाई आ घुसा। देखा और आंखों के सामने से बिजली कौंध गई। फूलो घुटनों में सिर छिपाकर बैठ गई। जब वह कपड़े पहनकर निकली कन्हाई बाहर पौरी में प्रतीक्षा कर रहा था। फूलो ने देखा और बरबस ही उसके होठों पर एक तरल मुस्कराहट फैल गई। पौरी में उजाला अधिक न था, तिसपर कन्हाई की आंखों पह चश्मा चढ़ा हुआ था। वह थोड़ा ही देख सका किन्तु पुराना आदमी था। समझ काफ़ी दूर ले गई। कहा—बहू ! चन्दा कहां है ?

उसके स्वर में बड़प्पन था, अधिकार था; डरने का कोई कारण शेष नहीं रहा। उसने फिर झुकाकर घूँघट खींच लिया और पांव के अंगूठे से भूमि कुरेदते हुए कहा—घर बैठे हैं।

कन्हाई ने फिर कहा—तो ले। लिए जा। बना लेना।

दो ककड़ी भीतर से लाकर दे दी हाथ में। फूलो ने घूँघट पकड़कर उठाने वाली उंगलियों के बीच से देखा, और मुस्कराती हुई ककड़ियों को डोल में रखकर चली गई।

कन्हाई कुछ सोचता-सा खड़ा रहा। चन्दा ने देखा और पूछा—यह कहां से ले आई।

कन्हाई ने भी अपने आंगन से वह सन्देह भरा स्वर सुना। वह सांस रोककर प्रतीक्षा में खड़ा रहा, देखें क्या कहती है ? फूलो ने तिनककर

कहा—परसों दो आने दिए थे ? तुम्हारी तरह मैं क्या चाट उड़ाती हूँ ? दारू पीती हूँ ? बच रहे थे तो कभी-कभार खाने को जी चाह ही आता है । सो ही ले आई ।

‘कहां ? भैया की दूकान से ?’ चन्दा ने फिर उपेक्षा से पूछा ।

‘हां ! नहीं तो ?’ फूलो ने धीरे से उत्तर दिया ।

‘राम-राम’ चन्दा का स्वर सुनाई दिया । ‘भइया हैं ये ? अकेले का खरच ही क्या है ? इसलिए जोड़-जोड़कर रखते हैं ? कौन है इनका ? न आगे हंसने को, न पीछे रोने को । दो ककड़ी तक नहीं दे सके जो फूटी आंख से देखकर दाम ले लिए ?’

फूलो ने उत्तर नहीं दिया । कुछ बुरबुराई अवश्य जिसे कन्हाई नहीं सुन सका । उसके दांतों ने क्रोध से भीतर पड़ी जीभ को काट लिया । कैसी है यह दुनियां ? मतलब के साथी हैं सब । इनका पेट तो नरक की आग है । बराबर डाले जाओ कभी नहीं बुभेगी । हाथ फैलाना सीखे हैं । कभी हाथ उल्टा करना नहीं आया ।

फिर मन एक अजीब उलझन में पड़ गया । व्याह हुए अभी तीन महीने भी नहीं हुए, बहू ने यह क्या रंग कर दिए । ठीक ही तो है । भूखा मारेगा तो क्यों मरेगी सो ? उसके तन-वदन में जोस है तो दस जगह खाएगी, ऐसी कौन बात है लाला में जो सती हो जाए । जैसे फैंरा, वैसा घरेजना । बैयर तो राखे से रहेगी ।

एक कुटिलता उसके होठों पर भटका खा गई ।

बरसात की ऊदी घटाओं ने आकाश घेर लिया । आंगन की कीच से पांव बचाता हुआ कन्हाई भीतर आकर बैठ गया । आज रोटी बनाने का मन नहीं कर रहा था । उठकर दिया जला दिया और फिर चुपचाप उसे देखता रहा । दिया भी अपनी एक आंख से ही चारों ओर के अन्धकार को देखकर कांप रहा था जैसे बार-बार उसकी पलकें झपक जाती हों ।

बाहर अन्धेरा छा चुका था। दूर पर सड़क भी नीरव थी। बीचड़ के कारण बहुत कम लोग इधर से उधर आ-जा रहे थे।

एकाएक दालान में खड़-खड़ की कुछ आवाज हुई। कन्हैया ने शंका से पुकारकर कहा—को है रे ?

एक मरियल कुत्ता लकड़ियों के पीछे से निकल कर चला गया। कन्हैया भेंप गया। उठकर बाहर चला। निन्हू हलवाई की दूकान पर जाकर दूध पिया और लौट आया। अब कौन खाने के पीछे हाथ हाथ करता ? अपना क्या है ? जो खा लिया, सो ही ठीक है। गिरस्ती के चक्कर हैं।

कन्हैया बिस्तर पर लेट गया। कुछ ही देर बाद उसकी आँध किसी के खिलखिला कर हंसने की आवाज से टूट गई। इस व्याघात से उसका मन असंतोष से भर गया। निश्चय ही फूलों ही हंसी थी। और फिर उसने देखा, वह रात थी, घटाग्रों वाली रात, सनसनाती, आकाश से पृथ्वी तक फन फुफकारती, रड़-रहकर लरजती। आँखों के सामने अप्र-स्तुत का चित्र आया। चन्दा ! फूलो ! रात ! बिस्तर और...

कन्हैया पशु की तरह एक बार आर्त स्वर से कराह उठा। वगल के घर की ध्वनियों ने उसे बेचैन कर दिया। अभी कुछ ही देर पहले पड़ोस की औरतों ने गाकर बन्द किया था —

रंडुआ तो रोवै आधी राति—

सुपने में देखी कामिनी...

अपमान से कन्हैया का पुरुषत्व क्षण भर को विषधर साँप की तरह बदला लेने की स्पर्धा से भर गया। क्यों है वह आज ऐसा की बिरादरी में लोग उसके पास पैसा रहने पर भी उसकी इज्जत नहीं करते ? सब उसे देखकर हंसते हैं। और यह चन्दा ! जो कुल दस-बारह आने लाता है, उसीमें गिरस्ती चलाता है, उसको न्यौता भी हैं, बुलावा भी है, उसके गीत भी हैं...

क्योंकि वह बिजार नहीं है। उसके घर है, उसकी बात है, एक गिरस्त की बात। जिसमें दुनियादारी की समझ है। उसका कोई था ही नहीं जो उसका ब्याह कराता। जैसे वह तो आदमी ही न था। तभी भी सब अपने-अपने में लगे थे, आज भी वही। कन्हाई व्याकुल-सा बिस्तर पर बैठ गया। आकाश में बादल गरज रहे थे। अभी उसकी आयु ही क्या थी? पैंतीसवां ही तो था। तब शहर में प्लेग फैला था, कन्हाई घुटनों चलता था। आज वह अकेला रह गया है। जैसे उसका कहीं कोई नहीं। उसके द्वार पर न सौना सरबन कुमार है न आंगन कोई लिपा-पुता ही। खुद ही जब ऊब जाता है सोचता है घर साफ करे, किन्तु वह औरत नहीं है। लुगाई का एक काम करते ही आंखें फूट चलीं। चूल्हा फूंकना लोग का काम नहीं।

क्या नहीं किया उसने चन्दा के लिए? क्या था उसके घर? आज तो लाला छैला बन गए हैं? कैसी मांग-पट्टी काढ़ के फेंटा बांधना आ गया है। बेटा के पास अघेली भी नहीं। बड़ा सतूना बांधा है।

उपेक्षा से उसके होंठ ठेढ़े हो गए। कन्हाई को याद आया। उसके पास पैसा है। वह भी ब्याह करेगा। चन्दा तो उसे लूटे जा रहा है। उसके गधों की लीद तक उसकी अपनी नहीं। क्या करे वह उसका? आती है वह हरम्पा फूलो और ले जाती है बटोर कर। लेकिन कौन धन जमा कर लेगी? उसके चन्दा की रोजी ही क्या है? वह तो इज्जतदार है। परसों उसने बिन्नु की जमानत दी है। दूकान है दूकान। कैसी लड़ती है चन्दा से दिन भर और रात को...

कन्हाई का ध्यान फूलो पर केन्द्रित हो गया। कांसे के हैं सब। बोरला तो, कड़े तो, खंगवारी तक। वह चांदी के मंढ़वा सकता है। फिर उसे वह दृश्य याद आया कि कैसे वह भीतर बिना खांसे घुस रहा था चन्दा के घर में और फूलो बैठी चक्की पीस रही थी। जीवन का वह गदराया स्वरूप याद आते ही कन्हाई हारकर लेट गया। किन्तु वह क्यों अकेला रहे? चन्दा को ही ऐसे सुख से रहने का ऐसा क्या हक है?

जन्म हुआ तब से उसे कभी सुख-चैन नहीं मिला । वह दूसरों के लिए कर-करके मरता गया और लोग-बाग अपना-अपना घर भरते गए । किसीने यह भी पूछा कि भैया कन्हैया ! तेरे भी कुछ सुख-दुख हैं ? कोई नहीं । सब अपने-अपने मतलब के ।

कन्हैया का चंदा के प्रति विद्वेष मुखर हो गया । अनजाने ही विरोध जाग उठा । कल उसके बच्चे होंगे, तो क्या मेरा नाम चलेगा ? बूढ़ा हो जाऊंगा तो खाट की अजमान तक कसने कोई नहीं आएगा । अपने फिर भी अपने हैं, पराया तो पराया ही रहेगा...

बादल आपस में टकरा गए । घोर वर्षा होने लगी । कन्हैया तड़पता सा करवटें बदलता रहा । सामने अंधकार में फूलो आकर खड़ी हो गई । पुरानी घृणा ने फिर आघात किया । वह स्वयं ऐसी है नागिन । जेठ से आंख मिलाके बात करना क्या खेल है ? कैसी आती है बात-बात पर । है बड़ी रुठल्लो, बाप के घर में उसके कुछ है नहीं, नहीं तो पीहर भाग-भाग जाती । बहू रखना भी आसान काम नहीं है । कहीं गधे ढो के आराम नहीं किए जाते । मैं ऐसे कब तक दोनों के समझौते कराता फिरूं । चंदा भी कोई आदमी में आदमी है ?

फिर वह मुस्करा उठा ।

कौन नहीं जानता चंदा लुगपिटा है । लुगाई की ठसक देखो, मालक तो गधा है । वह चमक-चौदिस वाली, डबल बचा नहीं कि फौरन खोम्चा वाला बुलाया और चाट उड़ा गई ।

मुझे क्या मालूम नहीं कि वह चन्दा से बचा-बचाके खाती है, चोरी करती है ।

फिर वही चंचल आंखें अंधेरे में चमक उठीं । कन्हैया के सीने पर किसीने कटारों की जोड़ी भोंक दी । आसमान में जोर से बिजली कड़क उठी । अरे काम तो कांकर-माटी के खाने वालों को सताता है, फिर दूध मलाई वालों की तो बात ही और है । चंदा बेटा का गरूर तो

देखो ! अरे तुम्हें ही देखूंगा । तेरी मैया ने मेरा घर तबाह किया था ।

कहीं दूर बिजली बड़ी जोर से कड़ककर गिरी । कन्हाई जागता रहा ।

भोर हो गई लेकिन आकाश में बादल छाए रहे । एक सन्नाटा समस्त बस्ती में समान रूप से घहर रहा था । कभी-कभी सड़क पर भूंकते कुत्तों के शोर से वह हल्की मगर घनी तह टूट जाती थी और जैसे-जैसे स्वर पीछे खिंचने लगते थे कि वही निस्तब्धता अपना दबाव डालने लगती थी । हवा ठण्डी थी । हल्की-हल्की बूँदाबांदी हो रही थी । समय काफी हो गया था । दफतरों और नौकरियों पर जाने वाले सबेरे ही अन्धेरे में से ही अपनी तकदीर को कोसते जा चुके थे । सड़क पर भी गांवों की-सी हल्की तन्द्वा छा रही थी । गली में चारों तरफ कीच ही कीच हो गई थी । कन्हाई की आंख खुल गई । उसने सुना आंगन में कोई औरत चल रही थी । बिछिया की हल्की आवाज उसके कानों में उतरकर दिल में समा गई । वह एकदम उठ बैठा । बाहर निकलकर देखा फूलो चुपचाप उसके गधों की लीद जमा कर रही थी । उसको देखकर उसके शरीर में नशा सा फैल गया । पास जाकर कहा—यह चोरी कर रही है बहू ?

फूलो ने धूँघट नहीं खींचा । मुंह उठा दिया । गेहुँए रंग में दो मांसल आंखें थीं जिनमें से रात का खुमार अभी भी बिल्कुल मिटा नहीं था । देखा, और धीरे से बोली—चोरी काहे की जेठजी । वे तो अन्धेरे ही लदाई लिए गधा लेकर चले गए । अब बरसात भी तो लग गई है । जो हात लगे उसीको बटोर लूँ । कंडे बना लूंगी, कुछ तो काम निकलेगा ही ।

कन्हाई प्रसन्न हुआ किन्तु प्रगट नहीं होने दी उसने वह चंचलता । निरातुर स्वर से कहा—‘क्यों ? चंदा गिरस्ती नहीं चला पाता ?

‘अपना-अपना भाग है जेठजी । इसमें कोई क्या करे । मरद जिसका

जोग होगा लुगाई उसीकी पांय पै पांय धरके बैठेगी ।’

‘तुझे बड़ा दुख है बहू !’ यह प्रश्न न होकर एक वक्तव्य के रूप में इतनी निश्चयात्मक ध्वनि में कन्हवाई के मुख से निकला जैसे उसे स्वयं इसपर पूरा विश्वास हो और वह अपनी बात को अब पीछे नहीं लेगा । फूलो की आंखों में पानी भर आया । उसने मुंह फेरकर आंखें पोंछ लीं । कन्हवाई ने उससे कहा—जो चाहे मांग लिया कर मुझसे । लाज न करियो । अपना ही घर समझ । चंदा तो निखट्ट है, निरा बुद्ध; समझी ? तेरा ही है सब कुछ, खा, पी, मेरा और कौन है ?

‘ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?’ फूलो ने टोककर पूछा ।

‘ब्याह ?’ कन्हवाई ने ऊपर देखकर कहा—ब्याह करके क्या होगा । मेरे तो परमात्मा ने सब दिया । तू फिर न कर । मेरे रहते कोई तेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता । यहीं रह तो भी डर नहीं । कन्हवाई का नाम बिरादरी में एक है । तेरे लिए उसका सब कुछ हाजिर है ।

फूलो ने आंख टेढ़ी करके कहा—बिरादरी क्या कहेगी ? जात-भाई क्या कहेंगे ? मेरा बाप क्या कहेगा ? और तुम्हारे भैया की कौन सुनेगा ?—जैसे फूलो ने सात पेड़ एक ही बार एक ही बाण से ब्रेधने की कड़ी शर्त सामने उपस्थित कर दी थी ।

कन्हवाई ने निडर होकर कहा—बिरादरी कुछ नहीं कर सकती । हुक्का-पानी बन्द करेंगे तो जात-भाई देखेंगे कि कन्हवाई बीड़ी-सिगरेट पिएगा । तेरे बाप को क्या मतलब ? वह तो एक बार पैर पूज चुका । और चंदा की हैसियत ही क्या कि मेरे सामने खड़ा हो ? तुझमें हिम्मत होनी चाहिए ।

फूलो ने अविश्वास से पूछा—दगा तो नहीं दोगे ? मैं कहीं की भी नहीं रहूंगी ?

कन्हवाई ने हाथ पकड़कर कहा—सौगन्ध है गंगाजली की । परजापती का बेटा हूं तो धोखा नहीं दूंगा । आज से तू मेरी है । यह घर अब तेरा है । उस भिखारी से तेरा कोई नाता नहीं रहा । रह, हुक्मत कर । मैं

चन्दा नहीं हूँ जो मिट्टी डालते में बात-बात पर बाबू लोगों के झूते खाऊँ और हंस के चुप रह जाऊँ । लौट के तो नहीं भागेगी ?

‘सौगन्ध है, मेरे एक बालक न हो जो तुम्हें छोड़कर जाऊँ ।’

कन्हारि ने आनंद के आवेश में उसका हाथ जोर से दाब दिया और कोठे में घुसकर द्वार बंद कर लिया । बूंदें फिर पड़ने लगी थीं । आस्मान साफ होने का नाम ही न लेता था जैसे पृथ्वी चारों ओर से घनी उसासों पर उसासें छोड़ रही थी ।

बिजली की तरह बात बस्ती के वातावरण पर कौंध गई । चन्दा ने जब लौटकर घर खाली देखा और देखा कि चूल्हा बिल्कुल ठण्डा पड़ा है तब उसका माथा ठनका । सोचा शायद पीहर चली गई है । बिना किसीसे कहे अपनी सुसराल चल पड़ा । दो दिन बाद जब वहां से लौटा तो पग भारी थे, हृदय में घृणा और क्रोध की भीषण आग लग रही थी । इधर कुंजो ने आते ही खबर दी—लाला ! कहां चले गए थे रूठकर ! बहू बिचारी किसके जिम्मे छोड़ गए थे ? लाचार कन्हारि ने दया की और बिचारी के दो दूक खाने का तो सिलसिला लगा !

चन्दा के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई । सीधे जाकर कन्हारि के आंगन में जा बैठा । फूलो ने भीतर से देखकर कहा—क्यों आए हो ?

‘क्यों आया हूँ ?’ चन्दा ने तड़पकर कहा—हरामजादी ! यहां आ गई तू और मैं तेरे पीछे जहान ढूँढ़ता फिरा ?

कन्हारि घर पर था नहीं । दूकान गया था, फूलो ने भीतर से ही कहा—फिर आना, जब वे आ जाएं, और नहीं, लोग कहेंगे दिन-दहाड़े पराए मरद घर में बैठे हैं ।

चन्दा के मुंह की आवाज मुंह में ही रह गई । क्षणभर वह वज्राहत सा किकत्तैव्यविमूढ़ कुछ भी नहीं समझ सका । फिर स्वस्थ होकर कहा—अब चल, यहां क्या कर रही है ? रोटी सेंक दे ।

फूलो निर्लज्जता से हंसी, कहा—अब मैं तुम्हारी नहीं हूँ समझे ? जब तुम्हारे भैया लौट आए तो उनसे बात करना ।

चन्दा नहीं उठा । कन्हाई के घुसते ही फिर लड़ाई शुरू हो गई । जब जूता पैजार तक हो गई तब और कोई चारा न समझकर फूलो घूँघट काढ़ के दोनों के बीच में आकर खड़ी हो गई । उस समय काफी शोरगुल सुनकर बस्ती के कितने ही बड़े-छोटे एकत्रित हो गए । बच्चों ने व्यर्थ ही युद्ध का वातावरण लाने को खूब हल्ला किया । कन्हाई और चन्दा दोनों छूट-छूटकर एक दूसरे पर झपटते थे । चन्दा जवान था इसीसे लोग भय से उसे पकड़ लेते थे और स्वाभाविक ही था उसका अधिक क्रोधित होना । इसी बीच में कन्हाई दो-एक मार जाता था । इस बीच-बचाव की हरकत में चन्दा काफी पिट गया क्योंकि एक चोट भी दस के बीच में बीस चोटों के बराबर है । अपमान से विह्वल होकर चन्दा रोने लगा । आंसू देखकर यद्यपि लोगों के हृदय में दयाभाव उत्पन्न हुआ किन्तु स्त्रियों ने ठिठोली कर दी । कैसा बालिक है जो जार-जार रो रहा है !

चन्दा लौट आकर बड़ी देर तक घर पर रोता रहा । सब जानते थे । किसीने कन्हाई से कुछ नहीं कहा । क्या सबकी आंखें फूट गई हैं ? बिरादरी के कान फूट गए हैं ? उठा और चौधरी पंच मुरली के घर की चौखट पर जा बैठा । चौधरी कहीं से सफेदी करके लौटे थे । हाथ-पैरों और गालों पर सफेद-सफेद छीटे दिखाई दे रहे थे । सुन तो चुके ही थे । फिर भी कहा—कह चन्दा कैसे आया है ?

चन्दा का गला रुंध गया । लाज ने जैसे उंगलियां गड़ा दीं । कैसे कहे कि उसके जीते-जागते लुगाई दूसरे के जा बैठी ? वह मरद ही क्या जिसमें इतना भी जोर नहीं कि औरत उसके कहने पर चले ? मरद तो वह कि निगाहों पर बैयर के पांव उठें । पलकें थम जाएं तो उठा कदम थम जाए । किन्तु अवरोध अधिक नहीं टिका । दौड़कर चौधरी के पांव पकड़ लिए । चौधरी ने संदिग्ध दृष्टि से देखकर गंभीरता से पीढ़े पर बैठते

हुए हुक्का संभाला और पूछा—तो कुछ कहेगा भी कि रोए ही जाएगा ? क्या आफत टूट पड़ी ऐसी ?

चंदा ने कहा—दादा, नाक कट गई । इज्जत धूल में मिल गई ।

चौधरी ने विस्मय से कहा—अरे ! सो कैसे ?

‘बहू तो भैया के जा बैठी ।’

चौधरी को झटका लगा । पूछा—सच ? यह कैसे ?

‘क्या बताऊं ? गरीब आदमी हूं । सुबह ही निकल जाता हूं । संभा को आता हूं । दिन भर वह घर में रहती है, भैया रहते हैं, फुसला लिया बिचारी को । मिठाई-विठाई खिलाते रहे । अब दादा, गिरस्ती सम्भालने वाले का ही हाथ तंग होता है । अकेले बिजार तो सड़क पर ही खाने को पा जाते हैं । सो चटाने को पैसे की क्या कमी ? गरीबी तो तब है जब रोज का बोझ है ?’

चौधरी ने सुना । सिर हिलाया । कहा कुछ नहीं । चंदा ने फिर कहा—दादा, पंच परमेश्वरों के रहते परजापतियों में ये अधरम होगा ?

‘पंचायत बुलाएगा ?’ चौधरी ने शंका से पूछा । ‘बड़ा खरचा होगा और हारने पर दण्ड भुगतान करनी पड़ेगी ।’

‘हारूंगा कैसे चौधरी ? मैं क्या गलत कह रहा हूं ? मेरी लुगाई है, व्याहता है, मैं तो उल्टे खाए लूंगा । मेरे जीते जी दूसरे के पास जा बैठी है । और छोटे की बड़े भाई के घर बैठने की कोई रीत नहीं, बड़े की छोटे के यहां बैठने की तो रीत भी है । कोई दिल्लगी है ?’ चंदा ने सिर उठा कर कहा । चौधरी ने फिर भी उत्तर नहीं दिया । उसने गंभीरता से कहा—तेरी मर्जी ।

चंदा उठ चला । राह में याद आया । खरचे को पैसा कहां है ? दो महीने का तो घर का ही किराया चढ़ा हुआ है । अब तक तो कैसे भी खुशामद से काम चल गया, लेकिन अब के कैसे भी मकानदार राजी नहीं होगा । कहेगा दिल्लगी हो गई ! खैर तब व्याह की बात थी, घेली-पैसे की बात, हाथ रहा न रहा, अब उसके पास तो कुछ था नहीं । वही

मजूरी के दस-बारह आने आए जो, सो उन्हीमें चार आने खाएगा बाकी बचाएगा, लेकिन उससे भी कितने दिन काम चलेगा ? ऐसा क्या बच जाएगा ? फिर विचार आया अभी रुपया लगा दूंगा । एक गधा बेच दूं । पंचायत भी हो जाएगी । किराया भी चुक जाएगा और फिर तो कन्हाई को रुपए भरने ही पड़ेंगे । फिर फूलो भी नहीं रहेगी । अपने मस्ती का खर्च चलेगा । और जो फूलो लौटी तो कन्हाई दंड भुगतान देगा और अब के फूलो से भी नौकरी करवा लूंगा । तब घर ठीक से चल पड़ेगा । अबके तो हरामजादी को जूते की गोंक के नीचे रखूंगा, ऐसा कि याद करे । मैंने ही दुलार कर-करके बिगाड़ दिया उसे ।

उधर कुंजो और अनेक स्त्रियों में ठिठोली हो रही थी । लजमंती ने कहा—ऐ भैना, एक आंख का कर बैठी । दो आंखों से ऐसी क्या दुसमनी निकली ?

‘कलदार की ठसक है बेटी, कलदार की’, चम्पी ने कहा और हाथ मटकाए । कुंजो अपने ग्यारहवें बच्चे को बैठी दूध पिला रही थी जो अपने सबसे बड़े भाई से लगभग सत्ताईस बरस छोटा था । बैठे ही बैठे मुस्कराई और गा उठी—जैसे देवरिया मलूक तैसे होते वालमाउ—

हंसी-दिल्ली के इस व्यापार में एक कौतूहल था, एक ईर्ष्या की अभिव्यंजना थी । सब जानते थे फूलो बदमास थी, लेकिन चंदा के गरीब होने के कारण किसी बात पर पक्का निर्णय नहीं ठहरता था ।

शाम हो चुकी थी । अंधेरा गहरा हो गया था । बस्ती अंधेरे में डूब गई थी । किसी-किसीके ओसारे में दिया जल रहा था । औरत और मरद आंगनों में बैठे बात कर रहे थे, हुक्का पी रहे थे । औरतें रोटी बना चुकी थीं । मरद खा चुके थे । अब रात हो गई । दुनिया की रोशनी सूरज है । वही चला गया तो फिर रात से होड़ किसलिए ? कैसे हुआ यह ? रासन, फलाने का व्याह, फलाने का दहेज आदि अनेक बातें हैं जिनपर वे बहस करते हैं और कच्चे मकानों में चुपचाप सो जाते हैं ।

उनके गधे चुप खड़े रहते हैं, कभी सोते हैं, कभी जागते हैं, उनके सोने-जागने का भेद भी अधिक स्पष्ट नहीं।

चौधरी पंच ने कन्हैया के घर में प्रवेश किया। उस समय कन्हैया कोठे से बाहर निकल रहा था। फौरन आगे बढ़कर कहा—आओ दादा, आओ।

पीढ़ा डाल दिया। हुक्का भरकर फूलों पास में ही घूँघट काढ़कर धर गई। चौधरी ने टेढ़ी आंख से उसका वह गदराया आकार देखा और हुक्के में कश मारते हुए वे सब समझ गए। कन्हैया ने इधर-उधर की बातें कीं। फिर उठाकर भीतर से एक चीज लाया। चौधरी ने देखा। हंसकर कहा—अरे इसका क्या होगा ?

कितु कन्हैया ने कहा—तो बात ही क्या है दादा ? कौन पराए हो ? और खोल दी ठरें की बोतल। 'अब तो', चौधरी ने कुल्हड़ में मुंह लगाते हुए कहा—महंगी हो गई है। हो गई है न ?

'दादा, लड़ाई है जे। कौन महंगा नहीं हो गया है ? मैं नहीं हुआ, कि तुम नहीं हुए ? अब तो मौत का इतना खरचा नहीं, जितना ज़िंदगी का।'

दोनों हंसे। हल्का नशा चढ़ चुका था और अब खोपड़ी में धोड़े की-सी टाप लगने ही वाली थी। ठरें की महक में कन्हैया ने पूछा—दादा, तुम्हारा ही भरोसा है !

चौधरी ने झूमते हुए कहा—अरे, काहे की फिकर है तुझे ?—कन्हैया ने हर्ष से कुल्हड़ फिर भर लिया और चौधरी के 'हां हां' करते भी उनके कुल्हड़ में आधी बोतल खाली कर दी। और उसके बाद चेतना के सत् पर वही अंधकार छा गया जो बाहर एकाग्रचित्त होकर तड़प रहा था।

पंचायत बड़े जोर-शोर से जुड़ी। चारों तरफ वही एक चर्चा थी। बस्ती के सारे मरद कुम्हार आकर इकट्ठे हो गए। चौधरी चौतरे पर आ बैठे। हुक्का हाथों हाथ घूमने लगा। चौधरी ने पहले कश लगाए और हुक्का सरका दिया। एक ओर कन्हैया खड़ा हुआ था। उसके शरीर

पर सफेद अंगरखा, साफ धोती थी और सांझ होने पर भी आंखों का खोटा छिपाने को हरा चश्मा लगा हुआ था। फूलो घूँघट काढ़े बैठी थी। दूसरी ओर चंदा था। गैली धोती, मैली फितूरी और मैली ही हल्की-सी नखदार टोपी मशीन से कटे बालों पर चिपक रही थी।

चौधरी ने गम्भीरता से पूछा—तुमने क्या किया ?

चंदा ने कहा—पंच परमेश्वर सुनें। चौधरी महाराज ने पूछा है, मैंने क्या किया ? सो कहता हूँ। बड़े भैया ने छोटे की बहू घर डाल ली है। वह उसकी बेटी के बराबर है।

चौधरी ने रोककर कहा—सो हममें भेद नहीं है चंदा। बड़ी जातों में बड़े की बहू सां समान है। हमारे तो यह कायदा नहीं। यह वामन-छत्री जात की बात है। हम तो नीच कहे गए हैं। और सुना।

चंदा का पहला बाण पत्थर से टकराया, फलक टूट गया। शिकारी विह्वल हो गया। उसने फिर धनुष पर बाण निकालकर चढ़ाया। कहा—मेरे जीते जी दूसरी ठौर जा बैठी है, मुझे हरजाना मिल जाना चाहिए।

चन्दा बैठ गया। पंचों के सिर हिले, कानाफूँसी हुई कि कोलाहल से जगह भर गई। चौधरी ने फिर कहा—कन्हाई, बोलो तुमने लड़की को घर कैसे डाल लिया ?

कन्हाई ने मन्त्रता से कहा—चौधरी महाराज न्याय करें। घर में भूखी नार आई। मालिक रोटी तक नहीं जुटा सका। तब मैंने देखा घर की बैयर डगर-डगर ठोकर खाएगी। सो कहा—रह, तेरा घर है। मुझे कौन छाती पर बांध के ले जाना है ?

चौधरी ने कहा—पंच सुनें। फूलो कहे कि कन्हाई ने ठीक कहा। क्या चन्दा के घर तुम्हें खाना नहीं मिलता था ?

फूलो ने स्वीकार किया। चौधरी ने कहा—पंच बताएं। लुगाई तब तक ही रहेगी जब तक मरद खाना देगा, भूखी मरने को तो नहीं ?

‘नहीं,’ पंचों ने एक स्वर उत्तर दिया।

कन्हाई ने फिर कहा—चन्दा के फूलो के बाप ने जब ठौर कर दी, तो चन्दा ने वादे के जेवर नहीं दिए ।

चन्दा गरजकर बोला—यह झूठ है । मैंने कोई वादाखिलाफी नहीं की ।

चौधरी ने रोककर कहा—फूलो, बता कि किसने ठीक कहा ?

फूलो ने फिर इंगित से कन्हाई की बात को ठीक साबित किया ।

चन्दा घृणा से विक्षुब्ध हो गया । चौधरी ने कहा—और तो बात साफ हो गई । जैसे बड़े की छोटे ने की तैसे छोटे की बड़े ने की । जेवर नहीं दिए, वादाखिलाफी की रोटी नहीं दी सो वह क्यों रहती ? पंच बताएं किसका कसूर है ?

पंच फिर परामर्श करने लगे

चन्दा ने उठकर कहा—पंच परमेश्वर की दुहाई । चौधरी भगमान के औतार हैं । मैं गरीब हूँ; जैसी रुखी-सूखी मैंने खाई, तैसी उसे खिलाई । घर-गिरस्ती में मरद के पीछे लुगाई चलती है । बताएं मैंने क्या दोस किया ?

फिर पंच विचार में पड़ गए । चौधरी ने सबके शांत होने पर फिर कहा—चन्दा रुपए मांगता है कि उसके जीते जी बहू ने दूसरी ठौर कर ली । अगर उसने दूसरा व्याह करके फूलो को छोड़ा होता तो जब तक फूलो दूसरी ठौर नहीं कर लेती तब तक उसका महीना उसे बांधना पड़ता । सदा की रीत है कि चन्दा को रुपया मिलना चाहिए । पंचों का न्याय हो । भूखी मारी या न मारी, वह खुद गरीब है । बेटी बाप ने देते वखत क्यों नहीं सोचा । जैसा खुद खाया तैसा उसे खिलाया । लेकिन व्याहता है उसकी फूलो । फूलो रजामन्द नहीं कि व्याह करके जनम भर भूखी मरे । वह ठौर छोड़ गई । जो खाने को दे, जो पालन करे, वही भरतार । पंच कहें । रुपया लेने का चन्दा को हक है या नहीं ?

फिर कोलाहल मच उठा । चौधरी ने तो जैसे हाथ धो लिए । उन्हें अब निर्णय को दुहराकर सुना देना था । फूलो अभी तक चुप खड़ी थी ।

बाजी कमजोर पड़ रही थी। उसे यह असह्य था। इससे तो वह कुलटा साबित हो जाएगी। बैठ गई सो बुरा नहीं, पर यह रुपया देना तो भुगतान है। उसने भरी पंचायत में आगे बढ़कर कहा—चौधरी भगवान है। पंच परमेश्वर हैं। लुगाई मरद की है मगर जो मरद ही न हो, उसकी कोई लुगाई नहीं है।

सबने विस्मय से सुना। सच, ठीक कहा था। व्याह हो जाने से ही क्या? पुरुषार्थहीन पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह स्त्री को दासी बना कर रखे।

पंचायत उठ गई। चन्दा पर पच्चीस रुपए दंड लगाए गए जो रोष से उसने वहीं फेंक दिए और हार कर लौट आया। आज उसे कहीं मुंह तक दिखाने की जगह न थी। अब उसका कहीं व्याह नहीं हो सकता। भरी पंचायत में फूलो ने उसकी टोपी उछालकर पैरों तले कुचल दी थी। यह ऐसी बात थी जिसमें फूलो की बात अंतिम निर्णय थी।

कन्हाई फूलो को लेकर लौट आया और रात को कन्हाई और चौधरी ने फिर से ठरें की बोटल खोली और दोनों मस्त होकर पीने लगे। जब बहुत रात हो गई तब चौधरी लड़खड़ाते हुए चले गए। फूलो चुपचाप बैठी थी। वह न जाने क्या-क्या सोच रही थी। और कन्हाई नशे से आंगन में आँधा पड़ा था।

दूसरे दिन शाम को मकानदार ने चन्दा का किबाड़ खटखटाया। चन्दा ने चुपचाप उसके हाथ पर किराया रख दिया। वह भ्रूम रहा था। उसके मुंह से दारू की बू आ रही थी। मकानदार चुपचाप लौट गया।

चन्दा लौटकर फिर पीने लगा और बकने लगा—बेटा कन्हाई, छिनाल तो छिनाल ही रहेगी। कुत्ते की पूंछ क्या सीधी हुई है? तेरी बहार भी कै दिन की है? बेटा अब गिरस्ती पड़ी है, अब दो दिन बाद तेरे भी खरचे देखंगा। हाथ-पांव ढीले हो जाएंगे, पर मैं कहेगा मजे बेटा!

चटाने को तो मेरे पास भी पैसे हो जाएंगे, समझा ? भगवान समझेगा तुमसे, पापी !

और वह देर तक बकता रहा, जोर-जोर से सुनाकर बकता रहा । कन्हाई ने सुना और संदिग्ध दृष्टि से फूलों की ओर देखा । उसका हृदय भीतर ही भीतर कांप उठा । फूलों समझ गई । चूनर के कोने में बंधे बीस रुपए खोल लिए । पांच पंचायत में लग गए । बीसों रुपए आंगन में खड़े होकर चन्दा के आंगन में बीच की जैर पर से फेंक दिए और कहा—भूखा मत मर । तेरे धन से सुरंग नहीं जाऊंगी । समझा ? ऐसे चटाने को बड़ा मक्खी का छत्ता लगा रखा है न ?

कन्हाई ने सुना, रुपए चन्दा के आंगन में खन्न करके गिरे और बिखर गए, किन्तु चन्दा उस समय नशे में बेहोश पड़ा था । उसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ा ।

फूलों आगे बढ़ आई, गर्व से कन्हाई की ओर देखा और एक चंचल हंसी बरबस ही अंग-अंग को गुदगुदाती उसके होंठों पर कांप गई । कन्हाई ने तिर झुका दिया । उसने मन ही मन अनुभव किया फूलों बहुत जवान थी और वह भाटे पर था ।

इस कहानी के सम्बन्ध में—

इस कहानी का एक ऐतिहासिक महत्व है कि दक्षिण भारत के जीवन पर यह हिंदी में पहली कहानी है जो शायद आज से तेरह वर्ष पहले छपी थी। इसमें एक प्रेमकथा है, जिसके माध्यम से मैंने दक्षिण के सामाजिक जीवन को चित्रित किया है। इस कहानी में दूसरी एक विशेषता यह है कि उत्तर और दक्षिण के धार्मिक जीवन के संबंध भी इसमें प्रगट हुए हैं। जिस वर्ग का चित्रण इसमें है, वह हिन्दी में अभी तक नहीं आया है। परन्तु मैं इन विशेषताओं को ऊपरी बातें ही मानता हूं। मुख्य वस्तु जो इसमें है वह है गोपालन, और उसके पिता तथा कोमल का चित्र। हिंदी को व्यापक होना है, परन्तु मानव के मूल रागों के उस तादात्म्य को देखते हुए, जो समस्त जीवन को एकसूत्र बनाए हुए हैं। 'समुद्र के फेन' तथा 'आदमी' भी मैंने दक्षिण भारत के जीवन के सम्बन्ध में लिखी हैं और उनमें दूसरे पक्षों को अवतरित किया है।

आत्मा एक फानूस है और उसपर जब प्रकाश पड़ता है

तब बहुरूपी रंग हमारे सामने आते हैं। ऐसी ही 'प्रवासी' है जिसमें मानव हृदय की उन गहराइयों के दर्शन होते हैं, जो ईमानदारी से पढ़ने पर बहुत दिनों तक मन में बनी रहती हैं।

समाज की विभीषिकाएं हमें चारों तरफ घेरे हुए हैं। और उनसे हम निरंतर संघर्ष करते हैं। यह संघर्ष एक सौंदर्य को जीवित रखने की अखण्ड लालसा है और मैंने सदैव ही साहित्य में उसे उतारने की चेष्टा की है। यांत्रिक प्रगतिवादी मुझसे प्रसन्न इसलिए नहीं हैं कि मैं सोचता क्यों हूं और सोचता हूं तो उनकी आज्ञा के दायरे के भीतर ही क्यों नहीं बना रहता। हिन्दी के आलोचक समाज को वर्गों में बांटकर रखें तो रखें, वे लेखकों को भी बांटते हैं। यह प्रगतिवादी है, यह प्रयोगवादी है, यह यह है, वह वह है। मैं बता दूँ कि प्रगतिवादी भी प्रयोगवादी हैं और दुरूह प्रतीकवाद का भी आसरा लेते हैं। और दोष, 'भेड़िया घसान' का है जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य में डाल गए। 'इस युग में यह ज्यादा है अतः युग का नाम यह होना चाहिए। जो इसमें नहीं बैठता वह फुटकर।' यह तर्क लेखक को युग के बन्धन में बांधकर समाप्त कर देता है। आलोचक को मेहनती होना चाहिए। हर लेखक को अलग महत्व देना आवश्यक है, न कि कोर्स की किताब लिखने के लिए कुछ धाराओं का अध्ययन करके आत्मसंतोष कर लेना चाहिए।

हिंदी में बहुत-बहुत अच्छी चीजें निकल रही हैं, परन्तु उन्हें देखा नहीं जाता, क्योंकि यहां तो 'धारावाद' का दृष्टिकोण बना हुआ है। यह समझना कि कोई लेखक प्रारम्भ से अन्त तक परिवर्तित नहीं होता इसी टुटपूँजिएपन (Mediocrity) का पर्याय है, जिसकी नींव आचार्य रख गए हैं। अतः आवश्यक है कि इस रवैए को बदला जाए। अवैज्ञानिक दृष्टिकोण सदैव अवैज्ञानिक फल ही देता है। इसीलिए मुझसे लोगों ने कहा था—क्या यह

दक्षिण भारत का चित्रण हिंदी में चलेगा ? इसे यहां की भूमि के निवासी पसन्द करेंगे ?—यह नितान्त संकीर्ण दृष्टिकोण है और घातक भी है । आवश्यकता है नए-नए द्वारों को खोलने की—शास्त्र की संकुचित मर्यादा से ऊपर उठकर मनुष्य को देखने की, और 'प्रवासी' उसीका आदिनाद है ।

प्रवासी

बरसात की झड़ी का वेग आसमान से उतरकर फुलवाड़ी में व्याप गया। चार-चार सौ बरस पुराने, ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के पत्ते घुल गए। संध्या की सुनहरी किरणों उनपर झलमलातीं, और फिर छोटी नदी की सतह पर फिसलने लगतीं।

यौवन के तीसरे पहर में गोपालन आज कुछ देख रहा था। आयु के इस शुष्क रेगिस्तान में उसकी सारी तरलता सूख चुकी थी। अनेक युवतियाँ आ-आकर पनघट पर पानी भरती रहीं। वे हंसकर बात करतीं, खड़ी-खड़ी अंगड़ाई लेतीं और फिर सिर पर दो-दो, तीन-तीन घड़े रख ठुमकती, लचकती चली जातीं। उनका निखरा हुआ यौवन दरिद्रता में भी छिप न पाता।

गोपालन को ये स्त्रियाँ देखने में मोहक लगतीं। ये उसके प्रांत की स्त्रियों से अधिक सुन्दर थीं। किन्तु कभी उसने यह विचार प्रगट नहीं होने दिया। उत्तर भारत में आकर वह सदा अकेला रहा है। उसके मन ने जैसे वही भी अपनेपन का अनुभव नहीं किया।

आज वह इस सुन्दर प्रांत में अकेला पड़ा है। कोई उसका मित्र नहीं है। सब उसे परदेशी के रूप में देखते हैं। और वह स्वयं इस भावना का आदी हो गया है, क्योंकि वह यहां हिन्दी भाषा नहीं जानता।

मन्दिर प्रायः सूना हो गया। यहां उसने केवल भगवान की पूजा की

है, पेट भरा है, और मन्दिर ही की भांति उसका जीवन भी एक श्रद्धा के भार को वहन करता चला जा रहा है। इस नीरव कोने में जैसे संसार निस्तब्ध हो चुका है, मनुष्य की सारी हलचल समाप्त हो चुकी है, और वह बिताए जा रहा है, बिताए जा रहा है ऐसी जिन्दगी, जो मन्दिर के पत्थरों की ही भांति कठोर है, जिसमें परिवर्तन होता तो हर क्षण है मगर दिखाई कभी नहीं देता।

रात हो गई। आकाश में अगणित तारे छिटक गए। पूजा करके गोपालन सोने चला गया। मठ के स्वामी पहले ही सो गए थे।

आज से दो सौ वर्ष पहले किसी व्यापारी ने यहां किसी दक्षिणी ब्राह्मण को गुरु बनाया था। तभी से शिष्य-परम्परा चली आ रही है। गोपालन यहां पुजारी के रूप में है।

आंख खोलकर देखा, आकाश में एक बार जोर से प्रकाश की एक लीक कांभी, और अन्धकार में विलीन हो गई। छत पर पड़े-पड़े गोपालन ने एक बार फुलवाड़ी के पेड़ों की ओर देखकर हाथ जोड़े, और आंखें बन्द कर लीं। व्यथा से उसका हृदय भर गया। यह जो एक तारा इस तरह टूटा है, ऐसे ही वह भी एक दिन समाप्त हो जाएगा। आज भी क्या उसका जीवन निरर्थक नहीं? वह किसीका नहीं, कोई उसका नहीं। जैसे अपनी ही सत्ता में अपनी परिधि की समाप्ति है।

गोपालन के मुख से एक आह निकल गई। इतनी तो बीत चुकी। अब और है ही कितनी? ऐसे ही वह भी बीत जाएगी। यहां क्या है? अनेक बार घंटे वजते हैं, अनेक बार पूजा होती है, अनेक बार भगवान के दर्शन करने आकर 'उत्तरादी' (उत्तर के रहने वाले) 'महाराज' और 'स्वामी' कह-कहकर लौट जाते हैं। बात-बात पर दंडवत करते हैं, गन्दे रहते हैं, और धर्म-कर्म के विषय में कुछ भी नहीं जानते।

गोपालन मन ही मन हंस उठा। कौन-सा है वह धर्म, जिसके लिए मनुष्य बली हो? कितने अच्छे हैं ये उत्तर के लोग, जो इतना स्नेह देते हैं! हमारे यहां तो लोग आपस में ही एक दूसरे को खाने दौड़ते हैं।

आडम्बर ! आडम्बर ! और कुछ नहीं । उंह ! मुझे क्या ? जब तक मानो तभी तक परमात्मा; जब न मानो, तो कुछ नहीं !

वह मुस्कराया । हृदय में एक बार भोंका-सा लगा । दीपक की बत्ती हिलने लगी । वह व्याकुल हो उठा । उसे प्यास लग रही थी; प्यास वह जो अतीत की सारी कड़ुवाहट लेकर उसके गले में चटकने लगी । सूनापन सघन हो चला । गोपालन ने आंखों को बन्द करके उनपर हाथ रख लिया, जैसे वह बाहर का कुछ भी न देखना चाहता हो ।

धीरे-धीरे उसे सारी बातें याद आने लगीं ।...

युवक गोपालन एक ब्राह्मण का बेटा था । पिता वैदिक आचरण से अपने जीवन के ढाल पर उतरते चले जा रहे थे, जैसे एक दिन गोपालन के पितामह की छाया में वह जीवन के चढ़ाव पर चढ़े थे । उनकी पवित्रता गांव भर में प्रसिद्ध थी । वृद्ध नयनाचारी प्रातःकाल ही उठ बैठते, और स्नान आदि से निवृत्त हो कर बारह तिलक लगाकर पूजा में प्रवृत्त हो जाते । सन्ध्या की झुकती बेला में जब लम्बे-लम्बे ताड़ के पेड़ों के पीछे आसमान लाल हो जाता, अद्भुत शिल्प से सज्जित गुम्बदों के पीछे एक मंदिर पर आभा फैल जाती, वह बैठे-बैठे घंटों 'कम्ब रामायण' गाया करते । और रात को जब विशाल मन्दिरों से घंटों और शंखों का नाद गांव में उठता-गिरता गूंजने लगता, तो वह अपने आपको नारायण की महामहिमामयी शक्ति के चरणों पर डालकर अपने आपको भूल जाते ।

गोपालन अपने स्वस्थ और सुदृढ़ शरीर के कारण अपने को बहुत-कुछ समझता । वृद्ध नयनाचारी देखते, और मन ही मन पुत्र के उच्छृंखल यौवन को देखकर मुस्कराते, किन्तु ऊपर से कभी विचलित होते न दीखते । वह उस परम्परा में पले थे, जिसमें पिता पिता ही नहीं एक गुरु भी होता है । उन्होंने ही उसे गुरु-मंत्र दिया था । आज गोपालन को आवश्यक धर्म-कर्म सब ज्ञात थे ।

संसार समझता कि गोपालन का आचरण उसकी आयु को देखते हुए अत्यधिक धार्मिक था । किन्तु जब वह मन्दिर की आड़ में अचेरा

होने पर छिपकर खड़ा हो जाता, और गांव में आकर रहने वाले रिटायर्ड पोस्ट-मास्टर की पुत्री कोमल को देखता, तो उस समय वेद ब्रह्मा के मुख में लौट जाते, कर्म और धर्म पराजित होकर उसके उठते हुए यौवन के सामने हाहाकर करने लगते । गोपालन मुग्ध हो जाता ।

ऐसे ही अनेक दिन बीत गए । गोपालन ने कभी अपने मुंह से कोमल से कुछ नहीं कहा । किन्तु सुन्दरी कोमल जानती थी कि तपे हुए तांबे के वर्ण का यह पुजारी केवल पत्थर के देवता का उपासक नहीं है, वरन् उसके भीतर एक हृदय भी है, जिसकी वह एकमात्र अधीश्वरी है । और गोपालन का उदास जीवन आशाओं को ठोकर मारकर जगाने की चेष्टा करता, जो पीड़ा से एक बार आंखें खोलतीं, और फिर करवट बदलकर सो जातीं ।

गोपालन का भाई वरदाचारी आज अनेक वर्षों से प्रवास में था । उसकी पत्नी राजम, जिसकी अवस्था ढल रही थी, अपने अधिकार की मादकता को सत्पुण्य उन्माद से अपने हाथ से किसी तरह भी नहीं जाने देना चाहती थी । सब उसकी कर्कशता से परिचित थे । वह जब कभी अवसर मिलता, तो दूसरों के सामने अपने पति के गुणों का बखान करने लगती, और फिर रोती । किन्तु लोगों को शायद ही उसकी कोई बात छू पाती । वरदाचारी एक मस्त आदमी था, जो अपनी पत्नी को अपने योग्य न समझकर उसे छोड़कर कहीं अज्ञातवास कर रहा था । राजम माथे पर कुमकुम लगाती, गले में त्रिमंगल्यम पहनती । उसका सौभाग्य जैसे अक्षय था । यह अज्ञात सुहाग उसके नारी जीवन का एक विराट् षड्यंत्र था । वृद्ध नयनाचारी को जब वह पर्व के दिनों दंडवत् करती, तो वृद्ध अपने दोनों हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद देता । वह पिता था । वरदाचारी उसका बड़ा बेटा था ।...

गोपालन ने करवट बदली । चारों तरफ अंधेरा था । उसने फिर आंखें बंद कर लीं । अंधेरा नाचने लगा ।

...वरदाचारी जब से घर छोड़कर गया कभी लौटकर नहीं आया ।

गोपालन नीचे गांव से ऊपर सात मील चढ़कर तिरुपथीमलय के विशाल श्रीनिवासन के मंदिर में काम करता । राजम घर का काम-काज संभालती । दो खेत पिता के थे । और चार खेत राजम के दहेज के थे, जो यद्यपि नयनाचारी ने बेटे के प्रतिदान में मांगे नहीं, किन्तु बेटा का अक्षुण्ण अधिकार बना देने के लिए गर्विता मां ने अपने आप दे दिए थे । गोपालन निरपेक्ष सा अपना काम किए जाता ।

एक दिन घर आकर गोपालन ने देखा, पिता उदास से बैठे थे । वह कुछ भी नहीं बोला । नहाकर उसने अपनी चोटी निचोड़ी, और खाने को बैठ गया । राजम ने उसकी ओर क्रोध से देखा, और ढेर सा चावल सामने लाकर केले के पत्ते पर परोस दिया । गोपालन ने देखा, और समझा । वह जता रही थी कि मेरे ही कारण तुम लोगों को खाना मिलता है, नहीं तो तुम लोग कुत्तों की तरह भूखों मरते होते । गोपालन के हृदय में तीर सा चुभा । किंतु फिर भी वह चुपचाप खाकर उठ आया । पिता आज चुप थे । आज उनके मुख से रामायण की एक पंक्ति भी नहीं निकली ।

गोपालन लौट चला । धीरे-धीरे फिर सात मील की सीढ़ियां चढ़ने लगा । इधर-उधर अनेक यात्री इस समय पैदल और डोलियों में थके-मांड़े उतर रहे थे ।

एकाएक गोपालन ठिठक गया । कोमल भी ऊपर चढ़ रही थी ।

वह अकेली थी, और ऐसा लगता था जैसे थक गई थी । गोपालन को प्रतीत हुआ, जैसे सचमुच ही राह बहुत लम्बी थी और वह स्वयं नहीं चढ़ सकता था । यात्रीगण 'गोविंदा ! गोविंदा !' पुकारते धीरे-धीरे उतरते चले जा रहे थे । गोपालन को लगा, जैसे वह नदी की बहती धारा थी, और ये दो पत्थर ऊपर की तरफ राह करके निकल जाना चाहते थे ।

थोड़ी दूर चलकर कोमल थककर एक सीढ़ी पर बैठ गई । गोपालन जब उसके पास पहुंचा, तो कोमल ने उसे पहचाना । मुस्करा उठी । गोपालन ने कहा—थक गई हो ?

कोमल ने लजाकर उत्तर दिया—थकेगा कौन नहीं ?...लेकिन तुम तो थके हुए नहीं दीखते !

गोपालन को हर्ष हुआ । वह उस स्त्री के सामने एक पुरुष के रूप में खड़ा था, और इसे वह स्त्री अपने पूर्ण यौवन से स्वीकार कर रही थी । उसने उसकी ओर देखा और देखता रहा । कोमल ने संकोच से आंखें झुका लीं । गोपालन ने देखा, वह सुन्दर थी । आकाश में चांदनी फूट-फूटकर फैल रही थी । सीढ़ी के दोनों ओर पहाड़ के हरे-हरे वृक्ष सन्-सन्-सन् कर रहे थे । और वह सीढ़ी जो सात मील लम्बी थी, जिसकी बिजली की बत्तियां आज चांदनी के कारण नहीं जली थीं, सांप सी कहीं करवट लेतीं, कहीं सीधी चलतीं, सफेद-मफेद सी ऐसी लगती थीं, जैसे आकाश गंगा स्वर्ग से पृथ्वी को मिला रही हो । और सामने साक्षात् मीनाक्षी बैठी थी, जिसका वड्ड्यणम (सोने की पेटी) अपने ऊपर विचित्र नक्काशी लिए उस मनोहर प्रकाश में दमदमा रहा था । गोपालन को क्षणभर अपनी दरिद्रता का आभास हुआ । ऐसी ही चीजों के लिए राजम मरती थी, अपने पति से नित्य झगड़ती थी, और अन्त में लाचार होकर वह घर छोड़ भाग गया था । कोमल की साड़ी के किनारे की ज़री झलमल-झलमल कर गोपालन के मन पर जाल बनकर छा गई । और वह विश्रांत सी उसके सामने बैठी थी । वह देख रहा था मन भरकर जिसे आज तक कोई भी नहीं पाया ।

कोमल उठी, और चलने लगी । गोपालन भी साथ-साथ चलने लगा । कोमल ने ही कहा—तो तुम मंदिर में अर्चना करते हो ?

‘हां ! और यहीं रहता हूं ।’ गोपालन ने धीरे से उतर दिया । फिर उसने रुककर पूछा—आप कहाँ जा रही हैं ?

‘आप’ सुनकर कोमल ने मुड़कर उसकी ओर देखा । गोपालन का दिल न जाने कैसा होने लगा ।

‘मैं ! मैं भी मंदिर की ही ओर जा रही हूं । पिता से मिलना है । उनको अपने होटल से फुर्सत कहाँ ? पहले पोस्टमास्टर थे न ! सो सुबह

से शाम तक काम में लगे रहने की ऐसी आदत हो गई है कि छोड़े नहीं छूटती । आज वहीं सो जाऊंगी । 'वाहन' भी देख लूंगी । आज किसकी सवारी निकलेगी, आर्यंगार ? हनुमान की या गरुड़ की !'

गोपालन ने सोचकर उत्तर दिया—आज तो शायद गरुड़ की निकलेगी ।

'गरुड़ की !' कोमल ने प्रसन्न होकर कहा—मुझे बड़ी अच्छी लगती है गरुड़ की सवारी !

गोपालन को अफसोस हुआ । आज उसीने शृङ्गार किया होता, तो कम से कम जता तो देता कि वह कितना निपुण था ।

कोमल ने पूछा—कितने बच्चे हैं तुम्हारे ?

गोपालन हंस दिया । बोला—बच्चे ! कैसे बच्चे ?

'क्यों ?' कोमल ने आश्चर्य से कहा—विवाह ही नहीं हुआ क्या ?

'नहीं !'

गोपालन को लगा, जैसे वे एक दूसरे के और पास आ गए । उसे प्रतीत हुआ, जैसे कोमल ने यह प्रश्न उससे जान-बूझकर किया था ।

धीरे-धीरे ऊपर बसे पेशेवर भिखारियों के भोंपड़े दिखाई देने लगे । कोमल फिर एक स्वच्छ शिला पर बैठ गई । इस समय कोढ़ी और रोगी, असली और नकली, सब भीतर घुसकर सो रहे थे । चारों तरफ एकांत था । अद्भुत नीरवता छा रही थी । गोपालन भी खड़ा हो गया ।

'बैठ जाओ आर्यंगार, बैठ जाओ ! तुम तो, लगता है, जैसे थकना ही नहीं जानते !'

वह बैठ गया । देर तक दोनों बातें करते रहे ।

जब वे भगवान् श्रीनिवास के मंदिर के सामने पहुंचे, तो वाद्य-ध्वनि के साथ वाहन निकल रहे थे । कोमल चली गई । गोपालन मन की सारी ममता को दोनों हाथों से छाती पर दाबकर भीड़ की ओर देखता रह गया ।

दूसरे दिन गोपालन ने देखा कि कुछ शहर के युवक मंदिर में दर्शन करने आए हैं, उनमें से एक जरी का कीमती दुपट्टा गले में डाले हैं, और उसके काले हाथ पर सोने की एक घड़ी बंधी है। उसे पत्थरों पर नंगे पैर चलने में कष्ट होता है। वह अपने साथियों से कह रहा था—अजीब हालत है ! मंदिर के कारण तो इधर-उधर भी जूता पहनकर पहाड़ पर चलने की आज्ञा नहीं है। प्राचीन काल में वैसा होता था, तो ठीक था। मगर अब ऐसा क्यों ?

गोपालन ने घृणा से नाक सिकोड़ ली। ये लोग थोड़ी-सी अंग्रेजी क्या पढ़ गए, धर्म-कर्म से हाथ ही धो बैठे। महागरिमामय श्रीनिवास इन्हें अवश्य दंड देगे। और वह अपने काम में लग गया।

दोपहर के समय जब वह मन्दिर से बाहर निकला, तो उसके पैर ठिठक गए। कोमल के पिता उसी पढ़े-लिखे युवक में खूब हंस-हंसकर बातें कर रहे थे। और वह युवक, काफी पीता, 'इडली' खाता, उन्हें कोई बड़ा दिलचस्प किस्सा सुना रहा था। वह भी होटल के भीतर घुम गया। वृद्ध पोस्टमास्टर उस समय प्रसन्न थे। उनके मुख पर एक चमक कांप रही थी, और स्थूल शरीर फड़क रहा था। गोपालन ने उन्हें नमस्कार किया। वृद्ध ने हाथ उठाकर कहा—अरे गोपालन, तुम इतने दिन कहां रहे ? इन्हें देखा ? आओ, तुम्हारा इनसे परिचय करा दूँ !

गोपालन ने उस युवक की ओर देखा, और एक आशंका उसके हृदय में उतर गई।

वृद्ध ने फिर कहा—ये हैं वेंकटराजन ! मदरास में पढ़ाई समाप्त कर दी है। एम० ए० हैं, एम० ए० ! अब यहीं तिरिचानूर में रहकर अपनी जमींदारी संभालेंगे। आना विवाह में ! जल्द ही हो जाएगा। मेरी वो सारी चिन्ता मिट गई। कोमल के योग्य तो मुझे कोई दिखता ही नहीं था। अन्त में उसीने इन्हें देखा। भाई, वक्त बदल गया है न ! तभी। भगवान की मर्जी है, वरना हमारे समय में क्या यह सब होता था ?

गोपालन ने सुना । हाथ जोड़े । युवक ने हंसकर सिर हिला दिया, जैसे वह जमाई होने की लाज रख रहा था । गोपालन चला आया ।

उस समय ब्रह्मचारी दिन में निकलने वाले वाहन के चारों ओर चार दलों में खड़े होकर वेद पाठ कर रहे थे, और नाक के श्वास से एक ही समय बांसुरी बजा रहे थे । जब एक दल ऋग्वेद के कुछ मंत्र पढ़ चुकता था, तो दूसरा सामवेद प्रारम्भ करता था । और अन्तराल में वेदों का वह गम्भीर घोष गूँजकर, पाषाणों से सहस्रों वर्ष पुराना गौरव टकराकर, आकाश की ओर सहस्र रश्मियाँ बनकर फूट निकलता था ।

गोपालन भीतर अन्धकार में एक विशाल स्तम्भ के सहारे बैठ गया । सिर चक्कर खा रहा था । पैरों के नीचे से धरती खिसक रही थी । हृदय में उन्माद घूँसे मार-मारकर हंस उठता था ।

धीरे-धीरे सांझ हो गई । गोपालन फिर भी वहीं पड़ा रहा । वृद्ध ताताचारी अन्त में हाथ में दीपक लेकर उसे दूँढ़ने निकल पड़ा । नित्य गोपालन दिन में अनेक बार उसके पास जाता, और कहता कि उसके अतिरिक्त मन्दिर में और कोई ऐसा न था जिसके प्रति उसकी श्रद्धा हो । ताताचारी वृद्ध हो गया था उसी मन्दिर की पूजा करते-करते, और उसे गोपालन से पुत्र का-सा स्नेह हो गया था ।

वृद्ध की छाती पर जैसे किसीने प्रहार किया । गोपालन उस नीरव अंधकार में पड़ा हुआ था । वृद्ध ने दीपक रख दिया, और घुटनों के बल बैठकर पुकारा—गोपालन !

गोपालन ने आंखें खोल दीं । वृद्ध ने उसका हाथ पकड़कर कहा—
बत्स ! क्या हुआ है तुझे ? अंधेरे में क्यों पड़ा है ?

गोपालन ने कुछ नहीं कहा ।

वृद्ध ने फिर कहा—पुत्र, तुझे ऐसी क्या पीड़ा है ? गोविन्द सबका मंगल करते हैं ! मुझसे कह !

गोपालन ने नीचे देखते हुए कहा—स्वामी, मुझसे एक भूल हुई ?

वृद्ध ने कहा—क्या ?

गोपालन ने दबे स्वर से कहा—मैंने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया था ! मैंने सोचा था कि कोमल से विवाह कर सकूँगा । मैं समझता था कि वह मुझसे प्रेम करती है ।

वृद्ध ने कहा—तूने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया, लेकिन यह नहीं देखा कि तेरे पैरों के नीचे ज़मीन तक नहीं है ! पागल ? कोमल से तू विवाह करेगा ? मन्दिर का अर्चक एक पोस्टमास्टर की पुत्री से विवाह करेगा ! घर में तेरे है क्या, जो तू ऐसी मूर्खतापूर्ण बात सोचने लगा ? राजम क्या रहने देगी तुझे ? क्या वृद्ध नयनाचारी को मालूम है कि उसका बेटा वह काम करने लगा है, जो प्राचीनकाल में राजा किया करते थे ? गोपालन, होश की बात कर, होश की !

गोपालन ने गर्दन झुका ली । उसका गला रुंध गया । वह कुछ भी नहीं कह सका ।

वृद्ध कहता गया—मैं तेरा ब्याह करा दूँगा । विश्वनाथ की कन्या अब चौदह बरस की हो चली है । पिता भी अर्चक है । मुझे आशा है कि वह तुझे अवश्य अपना जमाई बना लेगा । उठ, चल ! बेकार अंधेरे में पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है ?

किन्तु गोपालन नहीं उठा ।

वृद्ध देर तक समझता रहा । किन्तु जब कोई नतीजा नहीं निकला, तो वह वड़वड़ाता हुआ चला गया ।

आधी रात के बाद जब गोपालन बाहर निकला, तो हाथ-पांव ठूट रहे थे । चांदनी देखकर लगा, जैसे चारों तरफ आग लग रही हो । पुष्करिणी पर चन्द्रमा की शुभ्र किरणें खेल रही थीं । ऐसे ही दमयन्ती के विरह में नल बैठा रहा होगा । ऐसे ही उसके हृदय में भी आग लग रही होगी ।

वह उन्मत्त हो उठा । रात अंगड़ाई ले रही थी । वृद्ध ताताचारी का उपहास अब भी उसके कानों में गूँज रहा था ।

धीरे-धीरे भोर हो गई। ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी। उसने देखा, कोमल घड़ा लिए पुष्करिणी की ओर आ रही थी। गोपालन को देखकर वह मुस्कराई। फिर उसने कहा—कहो, आर्यंगार ! क्या रात सोये नहीं ? तुम्हारा मुंह पीला क्यों पड़ गया है ?

गोपालन का श्वास भीतर घुट उठा। उसके मुंह से निकला—
तुम्हारा विवाह हो रहा है ?

‘हां, हां ! क्यों ?’ उसने हंसकर कहा—आशीर्वाद दे रहे हो आचारी ? तिरचानूर में ही होगा। कोई दूर तो है नहीं। बस पहाड़ से उतरने की देर है।—और जैसे मन ही मन वह कल्पना के सुख में मस्त होकर मुस्कराई। फिर एकाएक उसने सिर उठाया। देखा, गोपालन का मुख और भी उतर गया था। लगा, जैसे उसका हृदय असह्य यंत्रणा से छटपटा रहा हो।

‘ओह !’ उसके मुंह से निकल गया—तुमको हुआ क्या है आह्वान ?

गोपालन गुम-सुम खड़ा रहा। कोमल जैसे समझ गई। उसने विद्रूप से कहा—आओगे विवाह में ? वहां कई अर्चक होंगे ! आना ! खूब दक्षिणा मिलेगी ? सच ! मैं झूठ नहीं कहती !

गोपालन के रोम-रोम पर किसीने अंगारे फेर दिए। फिर भी वह प्रतिकार की भावना को प्रोत्साहन नहीं दे सका। अपमान का घूंट उगल न सका। जैसे संसार को उस विष से बचाने के लिए वह उसे पी गया। उसके मुंह से केवल निकला—आऊंगा, देवी ! तुम्हारे सौभाग्य को बढ़ करने के लिए मैं मंत्र उच्चारण करने आऊंगा !

कोमल ने स्नेह से उसकी ओर देखा। जैसे उसकी शंका दूर हो चुकी थी।

गोपालन खड़ा नहीं रह सका। वह लौट आया। भीतर आकर एक स्तम्भ के सहारे खड़ा हो गया। लगा, जैसे वह भी पाषाण की एक मूर्ति हो !...

“शहनाई बजने लगी । उसका तीव्र शब्द, मंगल का सूचक बन-कर, कानों में गूँजने लगा । चारों ओर अग़रबत्ती की मोहक गंध उठ रही थी । पके हुए केलों की गंध उठती और हवा के साथ कभी-मंगल-कलशों पर जाकर थिरकती, कभी द्वार पर बंधे केले और आम के पत्तों को खड़खड़ा देती ।

कोमल का विवाह हो रहा था ।

गोपालन उदास-सा पास की धर्मशाला में बैठा शहनाई की आवाज़ सुन रहा था । जैसे यह समस्त वैभव, जो आंखों के सामने चल रहा है, इसमें उसका कुछ भी नहीं है, वह दलित और दयनीय-सा उठाकर किनारे रख दिया गया है कि अमृत की लहरें बहती जाएं, और वह केवल उनका कल-कल शब्द सुनता रहे, बोले कुछ नहीं, छुए कुछ नहीं ।

ब्राह्मण वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे होंगे । अग्नि में घी पड़ते ही लपटें हरहराकर किलकिलाती उठती होंगी, और धुँए से कोमल की आंखें लाल पड़ गई होंगी । अनेक युवक-युवती अच्छे कपड़े पहने वहाँ इकट्ठे होंगे । किन्तु गोपालन तो वहाँ नहीं जा सकता । वहाँ जाकर होगा भी क्या ?

पीछे से वृद्ध ताताचारी ने कंधे पर हाथ रखकर कहा—अरे गोपालन ! तू अभी यहीं है ? चलेगा नहीं ? वहाँ तो अनेक ब्राह्मणों को बुलाया गया है । जो जाएगा, दक्षिणा पाएगा, कोई कम-ज्यादा नहीं । आखिर इस स्थान के वही तो पुराने ज़मींदार हैं । अब भले ही उतने नहीं रहे । एक समय था जब वही यहाँ के सबसे बड़े आदमी थे । तू तो तब था भी नहीं । तेरे बाबा इन्हींके यहाँ अर्चक थे, इनके निजी मन्दिर में । और खाना बनाना तो उन्होंने और मेरे बड़े भाई ने इन्हींके बाबा के यहाँ सीखा था । चल न !

गोपालन ने कुछ नहीं कहा । वृद्ध ताताचारी के मुख पर एक वर्बरेतापूर्ण हास्य खेल उठा । उसने कहा—मूर्ख ! तू मेरे पुत्र के समान है ! क्यों

बेकार की बातों में पड़ा है ? तुम्हें शर्म नहीं आती कि प्रेम करने चला है ?

गोपालन ने फिर भी मौन रहना ही सबसे अच्छा समझा । जाने क्यों वह बहुत कुछ कहना चाहकर भी कुछ नहीं कह सका ।

अनन्त हाहाकार की तरह बाजे की आवाजें उसके कानों में गूँजती रही, जैसे उसके प्राणों पर वज्रों का भयानक प्रहार हो रहा हो । वह दरिद्र था । कोमल एक धनी की पुत्री थी । सोचते-सोचते वह रो पड़ा ।

घर पहुँचने पर राजम ने आंखों को कपाल पर चढ़ाकर, हाथ नचाकर कहा—तुम तो जैसे 'वड़ियवर' (रामनुजाचार्य) ही हो, जो तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं ! सभी तो गए थे । कम से कम बीस-बीस रुपया हर एक को मिला है । लेकिन तुमने तो जाने की जरूरत ही नहीं समझी ! —वह कहकर चुप हो गई । गोपालन के मुख पर असह्य व्यथा थी । लेकिन वह कुछ भी नहीं समझ सकी । अपार विस्मय से उसने देखा, वह सामने से हट गया । वह मुंह खोले ही खड़ी रह गई । अंत में उसने कुछ समझने का प्रयत्न किया । मुस्कराई । किन्तु इस योग की असम्भवता पर केवल हंस दी । नहीं, गोपालन कुछ भी हो, इतना मूर्ख नहीं हो सकता । राजम को फिर भी उससे कुछ स्नेह अवश्य था । पति के चले जाने पर वह उससे बात-बात पर चिढ़ती तो थी, किन्तु कुछ अपना अधिकार समझकर ही तो उससे जो चाहे कह जाती थी । खाने के समय भी व्यंग्य कसती, किन्तु कभी उसे भूखा न उठने देती । ऐसा होता, तो रोती, लड़ती, और अपनी करके ही रहती । जब कुछ समझ में नहीं आया, तो वह फिर अपने काम में लग गई ।

गोपालन की व्यथा बढ़ती ही गई । वह रात को बहुत कम सो पाता । कोमल सामने आकर खड़ी हो जाती । संध्या समय वह देखता, पति-पत्नी घूमने जाते । कोमल का गर्व से उन्नत मस्तक देखकर गोपालन का रहा-सहा धैर्य भी खुस हो जाता । मन ही मन वह तर्क करता, मैं क्या किसी-से कुछ कम हूँ ? अरे, अर्चक का बेटा अर्चक ही तो होगा ! पहले क्या

हमारी कम इज्जत थी ? अब जो लोग अंग्रेजी पढ़-पढ़कर धर्म को भूल केवल धन से मनुष्य के महत्व का माप करते हैं, वे ही हमारी उपेक्षा करते हैं । मैं अपना काम करता हूँ, खाता-पीता हूँ । किसीसे मांगने नहीं जाता ? और फिर अमीर-गरीब होना क्या किसीके हाथ की बात है ?

और सोचते-सोचते वह बड़बड़ा उठता, बूढ़ा ताताचारी सठिया गया है ! कहता है, वेंकटरामन को रसोइए की जरूरत है, जाकर नौकरी कर ले ! मैं कोमल की नौकरी करूँगा ? मैं उसका सेवक बनकर रहूँगा ? —और अपने आप से उमं घृणा हो आती । वह अंधेरे में मुंह छिपा लेता ।...

...धीरे-धीरे बात आई-गई हो गई । गोपालन का उद्वेग कभी उठता, कभी गिरता । वह बहुत कम बात करता । मन्दिर में ही अधिकांश समय बिताता । कभी-कभी जाकर पिता से मिल आता ।

नयनाचारी अवसर पाकर गोपालन के सामने राजम को बुलाकर कहते—वेटी, तेरे सामने तो यह बच्चा है । वरदाचारी इसे बहुत प्यार करता था । लेकिन ईश्वर की इच्छा ! वह तो इसे छोड़ गया, अब तू ही इसकी मां है । क्यों नहीं इसका भी ठिकाना कर देती ? मैं तो अब बूढ़ा हुआ । देख जाऊँ इसका ठिकाना लगते भी, नहीं तो फिर...

गोपालन ऊब जाता । देख जाने की इस तृष्णा में पिता के वात्सल्य-पूर्ण हृदय की कितनी अथाह ममता थी, वह न समझ पाता । वृद्ध कभी अपनी बात के विरुद्ध कुछ भी न सुनते, क्योंकि उन्हें अपनी आयु का गर्व था । वह औरों को अपने सामने बच्चा समझते थे । 'अभी क्या जाने वे ? जाने क्या-क्या सोचते हैं ! ऋषि-मुनियों ने भी यही तथ्य निकाला है । और इस संसार में है ही क्या ?'

राजम इसे तुरन्त स्वीकार कर लेती । वह दिल ही दिल में सोचती, और प्रसन्न होती, आएगी एक और । घर भर जाएगा । गृहस्थी बढ़ जाएगी । जीवन की यह नीरसता दूर हो जाएगी और सबसे बड़ी बात यह होगी कि अधिक छोटों के होने पर वह अधिक बड़ी हो जाएगी, और

अधिकार जताने को उसको अधिक लोग मिल जाएंगे। और फिर वह काम-काज से मुक्त होकर पूर्णतया स्वामिनी की तरह शासन कर सकेगी।

किन्तु प्रायः जैसे बात उठती, वैसे ही दब जाती। गोपालन की अरुचि अधिक बढ़ती जाती। और राजम अपने विचार दौड़ाती, किन्तु कहीं अन्त न मिलता। वह हारकर लड़ने लगती। वृद्ध कहते—देख, मेरी आत्मा भटकेगी !—किन्तु गोपालन को यह विश्वास न होता कि आत्मा है भी या नहीं। एक दिन तो परमात्मा की सत्ता पर जो पहले अडिग विश्वास था, वह भी डाँवाडोल हो गया। उससे डरकर गोपालन ने एक हजार आठ बार गायत्री का महाजप किया। तब कहीं मन का विकार दूर हुआ।

इतने सब पर भी उदासी दूर न हुई, और जीवन का रेगिस्तान तरल होता न दीखा।

एक दिन गोपालन जब खाने बैठा, तो राजम ने कहा—कुछ सुना तुमने ?

गोपालन ने पूछा—क्या ?

‘कोमल के बाप की अपने जमाई से खटपट हो गई ! बाप ने कहा—हम एक ही जगह रहते हैं। फिर लड़की यहां चली आया करे, तो क्या हर्ज है ? मगर वेंकटरामन तो अंग्रेजी पढ़ा है। वह क्या बहू के बिना एक भी मिनट रह सकता है ? लड़ाई हो गई। कोमल ने बाप को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका ! देखा, आजकल का जमाना ? जन्म भर पेट काटकर खिलाया, और यह नतीजा हुआ !’ और फिर दो क्षण रुककर राजम ने कहा—लड़की भी क्या कभी किसीकी हुई है ! यह तो पूर्व जन्म का दंड होता है कि खिला-पिलाकर लड़की को बड़ा करो और पैर पूज दूसरे को दान कर दो !

गोपालन ने राजम की बात की सत्यता स्वीकार की। लड़की फैशन में पड़ गई है। नहीं तो क्या बाप की अवहेलना करती ? किन्तु फिर दिज्ञाग में खयाल आया, पति ही तो विवाह के बाद सब-कुछ है। फिर भी

व्यक्तिगत विद्वेष ने कोई सामंजस्य स्थापित नहीं होने दिया। गोपालन यह नहीं सुनना चाहता था कि कोमल वेंकटरामन से विवाह करके सुखी थी।

चार महीने बीत गए। गोपालन ने फिर एक बात सुनी। छाती के घावों पर मरहम-सा लगा। विद्वेष की धधकती आग बुझी। कितना निकृष्ट सुख था वह ! किन्तु यह वह उस समय अनुभव नहीं कर सका।

कोमल का पति बीमार था। इलाज हो रहा था, किन्तु कोई लाभ होता नहीं दीखता था। गोपालन की व्यथा फिर भड़क उठी।

अंधेरा हो गया। द्वार पर खटखटाहट सुनकर, कोमल ने आकर द्वार खोल दिया। गोपालन उसे देखकर सकपका गया। उन दिनों कोमल के घर बहुत कम लोग जाते थे। किन्तु गोपालन को देखकर उसने तनिक भी विस्मय नहीं प्रगट किया, जैसे उसे मालूम था कि वह आएगा।

उसने कहा—कहो, आर्यंगार ! कैसे कष्ट किया ?

गोपालन ने देखा, उसके मुख पर उदासी थी, और वह उद्विग्न सी लग रही थी, जैसे भविष्य का भूत उसे रह-रहकर डरा देता हो, और वह आने वाली आपत्तियों को भेलने के लिए तैयार हो रही हो।

गोपालन ने कहा—कुछ नहीं ! हाल पूछने आया था।

‘अब तो वह अच्छे हैं पहले से। डाक्टर कहते हैं कि जल्द ही अच्छे हो जाएंगे !’

गोपालन ने चलते-चलते कहा—कभी आवश्यकता हो, तो मैं सेवा के लिए प्रस्तुत रहूंगा !

‘जानती हूँ ! किन्तु विश्वास तो तब होगा, जब तुम प्रत्यक्ष कुछ कर दिखाओगे। समय पर बुलाऊंगी, पीछे तो न हटोगे ?’

‘नहीं !’ गोपालन ने चलते-चलते कहा।

कोमल ने ‘नमस्कार !’ कहकर द्वार बन्द कर लिया।

गोपालन सोच रहा था चलते-चलते, मुझसे वह क्यों कुछ आशा करती है ? यह मान करने और छठने का अधिकार उसे दिया किसने ?

विश्वास करती है, फिर भी शंका की चाबुक मारकर आहत करने का प्रयत्न करती है !

कुछ दिन बाद घर-घर में एक नई अफवाह फैल गई। गोपालन ने सुना। उसे विश्वास नहीं हुआ। मगर राजम छोड़ने वाली नहीं थी। उसने उसे देखते ही कहा—अरे, सुना तुमने ? कोमल का आदमी शराब पीने लगा है ?

‘शराब !’ गोपालन के मुंह से निकला। ऐसा लगा उसे जैसे आसमान फट गया हो, या जमीन खिसक गई हो।

‘हां, हां, शराब, विलायती शराब ! मैं तो पहले ही जानती थी। अब तो पोस्टमास्टर घमण्ड नहीं कर सकेगा !’ और एक मुक्का सीने पर मारा, जैसे कोई कमाल किया हो, और मुस्कराती हुई गोपालन की ओर देखने लगी।

‘क्यों पीता है वह शराब ?’ गोपालन ने धीरे से कहा—ब्राह्मण का बेटा ! एक पवित्र वंश में उत्पन्न होकर ये चांडालों के से कर्म ! क्या ऐसे ही वह बाप का नाम चला रहा है ? पोस्टमास्टर तो कहते थे कि वह पढ़ा-लिखा है !

‘नाम तो तुम भी ऐसे ही चलाते ! वह तो कहो कि अंग्रेजी का काला अक्षर तुम्हारे लिए भैंस बराबर है ! वैसे भी क्या तुमने कभी बाप की बात मानी है ? मैंने कितनी लड़कियां देखीं, लेकिन तुम्हारी टेक तो जैसे पत्थर की लकीर है !’

गोपालन ने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। दो क्षण बाद उसने कहा—क्या यह बात सबको मालूम है ?

‘अरे बाप रे !’ राजम ने हाथ बजाकर कहा—मालूम कैसे न होगी ? क्या सब लोग जहर खाकर सो गए हैं ? वह पी-पी कर सड़क की नालियों में गिरता फिरे, और किसीको मालूम न हो !

गोपालन का चित्त खट्टा हो गया। अतीव घृणा से उसके मुंह में

भी एक कड़वाहट-सी फैल गई। यह क्या हुआ ? क्या बेचारी कोमल को कोई सुख बढ़ा नहीं है ?

बाहर आकर सुना, बात सचमुच फैल गई थी। ब्राह्मण समाज ने एक मत से उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया था। फिर भी किसीको एकदम आगे बढ़ने का साहस नहीं होता था। वेक्टरामन को सब लोग धनी जो समझते थे। गोपालन विश्ववध हो उठा।

करीब चार महीने और बीत गए। गोपालन के हृदय में एक तूफान सदा हाहाकार करता रहता। ऊपर से देखने में वह पहाड़ की तरह गम्भीर और शान्त दिखाई देता।

एक दिन शाम को जब वह पहाड़ से उतरने लगा, तो ताताचारी ने रास्ते में उसे रोककर कहा—वेंकटरामन मर गया। पोस्टमास्टर की बेटी विधवा हो गई !

गोपालन हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया। वृद्ध ताताचारी ने कोमल के प्रति उसके स्नेह को जानकर घृणा से मुंह फेर लिया। निस्सहाय कोमल के अंधकारमय भविष्य की बात सोचकर गोपालन का हृदय कांप उठा।

इसके बाद कुछ दिन चुपचाप बीत गए। फिर एक दिन गोपालन चौंक उठा। रामने एक लड़का खड़ा था। उसने लड़के की ओर बिना देखे ही पूछा—कौन है तू ? कहां से आया है ?

लड़का उसकी ओर निस्संकोच आंखों से देखकर बोला—कोमलम्मा ने भेजा है।

गोपालन जानकर भी अनजान बन गया। उसने अपरिचित की भांति सिर उठाकर पूछा—क्या बात है ? कहता क्यों नहीं ? बेकार क्यों खड़ा है ?

‘उन्होंने आपको बुलाया है !’ लड़के ने कहकर जीभ काट ली।

गोपालन हंस दिया। उसने कहा—बुलाया है ! क्यों ? कह दो जाकर, गोपालन उसका नौकर नहीं है ! समझे ? जा, चला जा यहां से !

लड़के की जीभ तालू से सट गई। वह कहना चाहकर भी और कुछ नहीं कह सका। इधर-उधर देखकर चला गया।

गोपालन का हृदय उन्मादजनित संतोष से भर गया। सोचने लगा वह, आज जब कोई साथी नहीं है, तब गोपालन की याद आई है ! किंतु मैं तो एक दरिद्र अर्चक हूं ! वह तो धनी घर में पली है। रुपया पानी की तरह बहा सकती है। वह क्यों मेरी प्रतीक्षा कर रही है ?—और उसको शांति-सी अनुभव हुई।—आज वह विधवा है। आज वह किसी काम की नहीं है। आज समाज में उसका कोई स्थान नहीं है। दो दिन बाद पुष्करिणी में नहाकर गले में गीला आंचल डालकर आएगी, तब देखूंगा उसका गर्व ! जब ब्राह्मण अपने हाथों से उसके गले का तिरमंगल्यम तोड़कर फेंक देंगे। जब उसका यौवन सिर धुन-धुनकर सुहाग के लिए तड़पेगा, तब देखूंगा उसकी शेखी !—वह पागलों की तरह हंस उठा। और स्वयं वह ? उसके होंठों पर घृणा की हंसी सर्पिणी की तरह तड़प उठी। क्या है गोपालन ? कुछ नहीं ! निरी मिट्टी !

इस द्वन्द्व ने उसे पराजित कर दिया। वह छत की ओर देखकर एक बार मन ही मन कांप उठा।

सहसा पग-चाप सुनकर सिर मोड़ा। देखा, तो विश्वास नहीं हुआ। सामने वज्राहत-सी कोमल खड़ी थी। वह आज भी सिर में तेल डाले थी। माथे पर कुमकुम लगा था, हाथों में चूड़ियां थीं। पूरी सुहागिन बनी थी आज भी। किन्तु आज वह एक प्रेत के लिए अपने आपको सजाए हुई थी, क्योंकि ग्यारहवें दिन ही धर्म के अनुसार वह अपना यह स्वरूप त्याग सकेगी।

गोपालन को लगा कि कोमल का सारा शृङ्गार ऐसा था, जैसे स्वर्ण चिता लपटें उछाल-उछालकर धधक रही हो। उसकी छाती धक से रह गई। उसने देखा, और देखता ही रह गया।

कोमल ने कहा—आयंगार, मैंने तुम्हें बुलाया था। जानते हो क्यों ?

‘नहीं !’ उसने कहा—किन्तु सोचता अवश्य हूँ !

‘क्या ?’ उसने निर्भीकता से पूछा ।

‘यही कि तुम एक जमींदार की पत्नी हो, और’...

‘पत्नी नहीं, आर्यंगार,’ कोमल ने बात काटकर कहा—विधवा कहो, एक मृत जमींदार की विधवा !—और वह हंस दी ।

गोपालन के शरीर में वह हंसी ज्वाला बनकर फैल गई । उसने नितांत कठोरता से कहा—विधवा ही सही । किन्तु तुम्हारे स्वामी मरकर भी जमीन तो अपने साथ ले नहीं गए ! उसकी तो तुम्हीं स्वामिनी हो । धन तो तुम्हारे पास है ही । तभी तुम्हें आज्ञा देना आता है ! इसीसे बुलवाया था न ? मुझ जैसे ब्राह्मण खरीद लेना क्या तुम्हारे लिए कठिन है ?

कोमल मुस्कराई, और बोली—नहीं आर्यंगार, यह गलत है ! यदि मैं अपने को घर के भीतर रखने का प्रयत्न न करती, तो संसार मेरी ओर उंगली उठाकर कहता कि देखो, मरने का आभरा देख रही थी । उसके जाते ही इसका रास्ता खुल गया ।

गोपालन ने सुना । पर वह कुछ भी नहीं समझ सका । वह चुप खड़ा रहा । कोमल ने फिर कहा—जानते हो, मैं तुम्हारे पास क्यों आई हूँ ?

‘नहीं !’ उसका स्वर गूँज उठा ! अब भी जैसे उसे उससे कोई समवेदना नहीं थी ।

कोमल कहती गई—जानते हो, मेरे स्वामी शराब पीने लग गए थे ?

‘जानता हूँ ! वह पापी था !’ गर्व से उसने सिर उठाकर कहा ।

‘हूँ !’ कोमल हंस दी—पापी कौन है, यह तो ईश्वर ही जानता है । मैं तो केवल यह जानती हूँ कि वह मेरे स्वामी थे !

गोपालन ने सिर उठाया । देखा, वह तनिक भी लज्जित न थी, जैसे

चिता की राख कभी भी लज्जित नहीं होती, चाहे उसपर कुत्ते चलते रहें या गीदड़ !

‘स्वामी !’ गोपालन के मुंह से निकला— तो वह शराब क्यों पीता था ?

‘डाक्टर ने कहा था कि दवा के रूप में पियो । किन्तु वह भी आदमी ही थे, आदत पड़ गई । बहुत पीने लगे । स्वास्थ्य गिर गया, किन्तु छोड़ नहीं सके । दोष तो मेरे सुहाग का है, उनका नहीं ! आखिर गलती आदमी से ही तो होती है !’

गोपालन ऊब गया । उसने पूछा—तो तुम मुझसे क्या चाहती हो ?

‘पिताजी की उनसे लड़ाई थी, यह भी तुम शायद जानते हो । और मैं पिता के घर नहीं जाती, यह भी तुम्हें शायद मालूम है । मालूम है न ?’

गोपालन ने सिर हिला दिया ।

‘आज उनकी मौत पर मेरे पिता ने हर्ष मनाया है ! सारा समाज उनकी ओर है, क्योंकि उनके पास पैसा है !’

‘पैसा तो तुम्हारे पास भी है !’ गोपालन ने व्यंग्य से कहा ।

‘कहां ! जब था, तब था ! अब तो नहीं है !’

‘क्यों ? सब क्या हो गया ?’

‘शराब मुप्त तो मिलती नहीं ?’ और वह फिर हंसी । गोपालन अचरजभरी आंखों से देखता रहा ।

वह फिर बोली—तुम्हारे धर्म में पिता पुत्री का शत्रु होकर भी धार्मिक ही रहता है ! लेकिन मैं भी सिर नहीं झुकाऊंगी ! देखते हो, जो गहने पहने हूं ! बेंच दूंगी इन्हें । पति का क्रिया-कर्म तो करना ही होगा । नहीं मानती न सही; नहीं जानती, न सही ! किन्तु मनुष्य मरकर प्रेत नहीं होता यह भी तो नहीं जानती ! पुरखे जो कुछ करते आए हैं, उसे कर देना भी तो जरूरी है, आर्यंगार ? और फिर एक जमींदार का क्रिया-

कर्म भी तो उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल और अनुरूप ही होना चाहिए न ?—वह रुक गई, जैसे श्वास लेने के लिए ।

‘तो तुम तैयार हो ?’ दो क्षण निस्तब्ध रहने के बाद उसने कहा—ब्राह्मण आते नहीं । मैं तो कहीं आ-जा नहीं सकती । तुम अपने ऊपर क्रिया-कर्म करा देने की जिम्मेदारी लेते हो ?

गोपालन चुप रहा ।

‘नहीं होता साहस ?’ उसने पूछा—यदि तुम्हारा धर्म एक बात आवश्यक करके उसका साधन केवल रिश्वत के बल पर दिला सकता है, तो मैं कुछ नहीं कहती ! क्रिया-कर्म न होगा, तो न हो ! तब मेरा सुहाग भी समाप्त न होगा ! जब तक वह प्रेत हैं, तब तक मैं विधवा नहीं हूँ । मैं ऐसे ही शृंगार करती रहूँगी । तब एक दिन लाचार होकर तुम ब्राह्मणों को शायद मेरी हत्या करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाएगा !

गोपालन के हृदय को जैसे किसीने जोर से नोच लिया । प्रेत की पत्नी ! कौन ? कोमल ! नहीं, नहीं, यह अत्याचार नहीं हो सकता ! उसने सिर उठाकर दृढ़ स्वर में कहा—जाओ, लौट जाओ ! मैं आऊँगा तुम्हारे सुहाग का अन्त करने ! जिस धर्म ने ब्राह्मण को सब कुछ बनाया है, उसीने ब्राह्मण का सबसे बड़ा अपराध धर्म के काम न आना भी कहा है ! तुम्हारा पति पापी था । मैं उसकी आत्मा को न केवल प्रेत-योनि से छुड़ाऊँगा, बल्कि उसे पवित्र भी करूँगा । युग-युग के अंधकार में वह नहीं भटकेगा । उसकी प्यास बुझेगी, उसकी भूख मिटेगी । और तुम्हारे सौभाग्य का कुमकुम मिटाकर मैं तुम्हें भी पवित्र कर दूँगा । तुम्हारी यातना को मैं मन्त्रों से केवल समाप्त ही नहीं करूँगा, वरन एकादश के दिन स्वयं प्रेत का यमभोज करूँगा, और वह सीधा स्वर्ग चला जाएगा !—कहकर गोपालन ने उसकी ओर इस तरह देखा, जैसे आशा कर रहा हो कि वह कृतज्ञता से नतमस्तक हो जाएगी, क्योंकि एकादश का यम-भोज अग्नि की भेंट किया जाता है, और परम्परा का विश्वास

है कि पवित्र वैदिक रीति से चलने वाला ब्राह्मण उसे खाकर अधिक दिन जीवित नहीं रहता ।

किन्तु कोमल अप्रभावित सी खड़ी थी । उसने सिर हिलाकर कहा— वह सब तो नहीं होगा आर्यंगार ! जो खाली हो गया है, वह तो कभी भी नहीं भर सकेगा । हां, क्रिया-कर्म अवश्य हो जाएगा । मैं कृतज्ञ होऊंगी !

गोपालन किर्तव्य-विमूढ़ सा हो गया । वह क्या कहे ?

तभी कोमल ने मुड़कर कहा—तो, आर्यंगार, कल नवां दिन है । कल ही से काम प्रारम्भ होगा ।

‘तुम निश्चित रहो ?’ गोपालन ने उत्तर दिया ।

कोमल झुकी, और प्रणाम किया । उसकी आंखों से दो बूंद आंसू पृथ्वी पर टपक पड़े । उसने कहा—जाती तो हूं ! ‘‘यह मैं जानती हूं कि मेरे आने के पहले तुम मुझसे क्रुद्ध थे । अब तो नहीं हो ?

‘नहीं !’ गोपालन ने निर्विकार होकर कहा ।

‘तुम पूरे पत्थर हो ! तुम्हारा हृदय शायद मेरे अत्याचारों के कारण अब बिल्कुल निर्जीव-सा हो गया है ?’

‘नहीं !’ गोपालन ने कहकर मुंह फेर लिया । फिर उसने एक क्षण रुककर कहा—यह गर्व लेकर न जाना कि तुमने मुझे मूर्ख बना दिया है । जो कुछ मैं कर रहा हूं, वह केवल इसलिए कर रहा कि ब्राह्मण होने के कारण लाचार हूं ! मैं तुमपर कोई भी एहसान नहीं कर रहा हूं ! और न मैं तुम्हें प्यार करता हूं !

कोमल हंस दी । उसके होठों पर एक तरलता सिहर उठी । उसने स्नेह भरे स्वर में कहा—बालक !

जब वह चली गई, तो गोपालन काम में लग गया ।

दूसरे ही दिन धूम-धाम से क्रिया-कर्म प्रारम्भ हो गया । पहले जो ब्राह्मण हिचक रहे थे, अब वे अपने आप आने लगे । गोपालन ने अपने

हाथ से कोमल के गहने बेचकर उसके सामने रुपए रख दिए। काम चल निकला। प्रारम्भ के सारे विघ्न राह से हट गए।

इस सबसे जो सबसे अधिक क्रुद्ध हुई, वह राजम थी। उसने पूछा—
क्यों, काफी मिलेगा ?

गोपालन ने उपेक्षा के भाव से कहा—मौत का काम है, शादी का नहीं कि ज़िद करूंगा ! ज़मींदार की विधवा जो दे देगी, ले लूंगा।

‘ओ हो ! अब तो पूरे धर्मत्मा बन गए ! यहां मुफ्त भर पेट खिलाती हूं न बाप-पेटे को, इसीसे दिमाग आसमान पर चढ़ा जा रहा है ! अगर सौ रुपए लाकर मुझे न देना हो, तो यहां मुंह मत दिखाना ! हयादार होगे, तो आप ही यहां लौटकर न आओगे ! भली कही ! रोज बड़े आदमी मरते हैं, न कि उनका भी काम मुफ्त किया जाए ! देने को पैसे न हो, तो गान भी लिया जाए। ज़मीन तो छाती पर बांध कर ले नहीं गया ! अभी बहुत है। फिर अभी से क्यों फटी जा रही है उसकी छाती ? मरे का परलोक सुधारने में भी पैसा खर्च न करेगी ! कंजूस कहीं की !’

‘भाभी !’ पहली बार गोपालन ने कठोर प्रतिकार किया—मैं कुत्ता नहीं हूं ! समझी ?

‘तो मैं भी गाय नहीं हूं ! समझे ? बैल भी जब हल चलाते हैं, तब खाने को पाते हैं। और यहां बाप और बेटे दोनों की जुगाली सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गए ! मैं कहे देती हूं...’

गोपालन से अधिक नहीं सुना गया। चिल्ला उठा—भाभी ! तेरा पाई-पाई चुका दूंगा ! जब तूने खिलाया था, तब मैं छोटा था, नहीं तो कभी वह जहर न खाता ! पिता वृद्ध हैं। तू जो अपना सुहाग लिए फिरती है, सो अपने पति को तूने नहीं खिलाया था। इस बूढ़े ने ही अपनी हड्डी निचोड़कर उसे खिलाया-पिलाया था ! समझी ?

राजम अवाक् देखती रह गई। गोपालन के चले जाने पर, उसने वृद्ध

नयनाचारी को जा घेरा । कहा—देवर वेंकटरामन के एकाह (एकादश) में बैठने वाले हैं !

‘सो तो उसे करना ही चाहिए ! ब्राह्मण का बेटा है न !’ वृद्ध ने कहा । उनकी दाणी हमेशा नम्र रहती ।

‘और पैसा कुछ भी नहीं मिलेगा !’ राजम ने उकसाया ।

‘न सही !’ वृद्ध ने प्रसन्न होकर कहा—किन्तु धर्म का काम तो करना ही होगा । यदि पैसे के बल पर ही क्रिया-कर्म हो, तो मुझ जैसे गरीब का तो कभी न हो सकेगा !

राजम लाचार हो गई । वृद्ध के पीछे ही वह बड़बड़ाती थी । सामने कुछ कुहने का साहस नहीं होता था । उसने अंतिम बाण मारा—देवर ब्रह्मचारी हैं । क्या उसका एकाह में बैठना उचित होगा ? यदि वह भी नहीं रहेगा, तो फिर वंश कैसे चलेगा ? कौन देगा हम सबको पानी ?

वृद्ध चौंक उठा । उसने सोचकर कहा—तो उस मूर्ख से किसने कहा कि वह एकाह में भोजन करे ? किसने कहा उससे ? बाप के रहते बेटा बैठ जाए, ऐसा तो कभी नहीं सुना ! मैं बैदूंगा ! घबरा मत ! तेरे देवर का दाल भी बांका न होगा ! न जाने मुझे कौन कहता था कि अब समय आ गया ! सचमुच समय आ गया !—और वृद्ध गम्भीर हो गया ।

दिन बीत गया । सांझ बीत गई । रात हो गई । वृद्ध वैसे ही चिंता में मग्न-सा बैठा रहा, जैसे अपने लम्बे रास्ते को मुड़कर देख रहा हो, और अपने पिछले प्रत्येक कर्म को याद कर रहा हो, जैसे उसे उन पुराने पथों से मोह हो गया हो जो अब उसे सदा के लिए छोड़ देने होंगे । वह नहीं रहेगा, नहीं रहेगा, और दुनिया फिर भी चलती जाएगी, चलती जाएगी । किन्तु फिर भी उसे दुख नहीं था, डर नहीं था । जैसे जीवन को उसने स्वीकार किया था, वैसे ही मृत्यु को भी वह चुपचाप स्वीकार कर लेगा । सारा जीवन एक खेल-सा लग रहा था । कल तक सबके केन्द्र वही थे, और कल जब वह नहीं रहेंगे, तो बेटा छाती पर पत्थर रखकर रो लेगा । और क्या करेगा बेचारा ? सदा के लिए सब काम तो रुकेंगे

नहीं। किन्तु इसके लिए क्या दुःख ? यह परम्परा तो ऐसे ही चलती जाएगी। पिता पुत्र का संसार बनाए, और पुत्र पिता का परलोक बनाए। इसीलिए तो इतने स्नेह, इतनी भक्ति की सृष्टि हुई है। 'एकाह में बैठना होगा। ब्राह्मण होकर केवल धन के लिए मरे, तो वह कुत्ते से भी बदतर ! आज ब्राह्मण जो लोलुपता दिखा रहे हैं, इसी कारण तो उनका मान नहीं रहा। अब बड्डन (भंगी) भी राहों पर आते समय आवाज देकर हट नहीं जाते। फिर मन में विचार आया—क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? क्या अब उनकी छाया लगने से भगवान् अस्पृश्य हो जाएंगे ? नहीं !—मृत्यु की महान् समता के उच्च आदर्श के प्रकाश में वृद्ध ने उस जड़वाद को दूतकार दिया।

कल गोपालन याद करेगा कि वृद्ध यहां बैठता था, यहां पूजा करता था। और बैठकर घंटों सोचेगा, घबराएगा। किन्तु होते-होते सब ठीक हो जाएगा। समय अपने आप ठीक कर लेगा। वृद्ध का हृदय अतीव स्नेह से एक बार विह्वल हो गया। मृत्यु आकर सब कुछ समाप्त कर देगी। और पागल बेटा उस मिट्टी को चिता पर रखते समय रोएगा।

मृत्यु ! वृद्ध के मुंह से वेद के महामृत्युंजय मंत्र के शब्द फूट निकले 'त्र्यम्बकं...' जैसे आज वह अनेक शक्तियों से पूर्ण महारुद्र त्र्यम्बक का यम को क्षणभर रोकने के लिए आवाहन कर रहा हो।

और जो कुछ अभी तक हुआ है, कल ऐसे लगने लगेगा जैसे कभी नहीं हुआ। राख को बहाकर जब पुत्र लौटेगा, तब संसार में नयनाचारी नाम का कोई चिह्न तक नहीं रहेगा। आज तक जिस सबको अपना समझा था, वह सब पराया हो जाएगा। सब पीछे छूट जाएगा, सब रह जाएगा। किन्तु केवल वही नहीं रहेगा—कल मैं ही एकाह में बैठूंगा !—और वृद्ध वैसे ही बैठा रहा। जैसे आज जीवन मृत्यु का महान् आवाहन कर रहा हो !

राजम स्तंभित सी, डरी सी सोच-विचार में पड़ गई—यह बूढ़ा क्या करने वाला है ? क्या सचमुच वह जाकर एकाह में बैठ जाएगा ? एकाह

का भोजन वे अग्नि की भेंट क्यों नहीं कर देते ? किन्तु उनकी बला से ! जब एक सूर्य ब्राह्मण मिल रहा है, तो अग्नि में क्यों डाले ? और दक्षिणा के नाम पर दिखा देगे सींग ! कुछ नहीं ! कौन देता है सिधाई से ?— और वृद्ध नयनाचारी और गोपालन के प्रति उसके मन में ममता जाग उठी—कुछ भी हो, अपने तो ये ही हैं ! ईश्वर की इच्छा ! जो होना होगा, वह तो होगा ही ।

एकाएक वह ब्राह्मण जाति को मन ही मन तिरस्कार से गाली दे बैठी । किन्तु फिर ध्यान आया कि यह ब्राह्मण की ही महिमा थी कि वे जान गए कि मरने पर आदमी प्रेत होता है, और वह डर गई, और प्रायश्चित्त के रूप में भगवान के समक्ष सिर झुकाकर हाथ जोड़ दिए ।

वह चुपचाप देखती, गोपालन व्यस्त रहता । ब्राह्मणों को कोमल उसीकी राय लेकर दक्षिणा देती । सब काम वही करता । कोई-कोई स्त्री उसकी ओर संदेहपूर्ण दृष्टि से देखती कि इसे इस सबमें इतनी दिल-चस्पी क्यों है । किन्तु वह शोक का काम था इसीलिए उसकी चर्चा चल न पाती, वरना वहां कोई ऐसा न था, जो कोमल और गोपालन के संबंध के अनौचित्य की सम्भवता पर विचार करना पसन्द न करता हो ।

उन दोनों के सम्बन्ध के विषय में सन्देह लोगों को बहुत पहले से ही था । अब सन्देह सत्य सा लगने लगा ।

राजम को क्रोध आया ।—तभी सब काम मुप्त किए जा रहे हैं ! रांड से लगाव जो हो गया है ! देखो तो, ऊपर से कैसा चिकना बादाम लगता था ! मगर अन्दर की किसे खबर थी ?

ग्यारहवां दिन अपनी पूरी भयंकरता के साथ सिर पर आ गया । जब कोमल को देखकर स्त्रियां इधर-उधर से आ-आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगीं तब वाद्यार (पुरोहित) ने अग्नि में आहुति दी । खाना केले के पत्ते पर परोस दिया गया । कोमल चुप खड़ी रही । उसकी आंखों में एक भी बूंद आंसू नहीं था, बल्कि एक गर्व था कि देखो, किसीके किए कुछ न हुआ, क्रिया-कर्म हुआ और हो रहा है ।

वाद्यार और अनेक ब्राह्मणों ने मंत्र पढ़ने शुरू किए । 'प्रेत' शब्द साक्षात् कराल प्रेत बनकर आग से उठते धुंए को भकभोर गया । वाद्यार ने एकाएक पूछा—एकाह में कौन-कौन बैठेगा ?

ब्राह्मण एक दूसरे का मुंह देखने लगे । किसीको नहीं मालूम था कि दक्षिणा क्या मिलेगी । व्यर्थ कौन मौत सिर पर मोल लेता ? शठकोपन ने बैठे-वैठे ही कहा—अग्नि को होम करो बृहस्पति !

'नहीं !' गोपालन ने आगे बढ़कर कहा—मैं बैठूंगा !

सबने अचरज से उसकी ओर देखा । वाद्यार रुककर बोला—
तुम्हारा नाम ?

उसी समय गोपालन ने विस्मय से देखा, एक वृद्ध ने पीछे से कहा—
नयनाचारी !

वाद्यार ने पूछा—पिता का नाम ?

'विजयराघवाचारी !' उसके मुख पर एक मुस्कराहट फैल गई ।

गोपालन चिल्ला उठा—पिताजी, यह तुमने क्या किया ?

वाद्यार तब तक नयनाचारी पर यम का आवाहन कर चुका था । गोपालन का हृदय भर आया । वह बोला—किन्तु, पिताजी, तुम मर जाओगे ! क्या तुम नहीं जानते कि पवित्र आचरण रखने वाला ब्राह्मण इसके बाद अधिक दिन तक नहीं जीवित रहता ?

वृद्ध ने मुस्कराकर कहा—श्रीनिवासन ने स्वप्न में जो कह दिया है, वह क्या झूठ होगा ? जा, राजम तेरा विवाह करा देगी । इसके बाद मुझे पितृ-ऋण से मुक्त कर देना ।

किन्तु गोपाल नहीं हटा । वृद्ध ने धक्का देकर उसे हटा दिया, और खाने बैठ गया ।

वाद्यार मंत्र पढ़ता रहा । कभी-कभी अन्य ब्राह्मण भी स्वर में स्वर मिलाते । उनके गम्भीर शब्द से अग्नि थरथराने लगी, धुआं चारों ओर फैल गया, और प्रेत की अनन्त यात्रा सजीव होकर आंखों के सामने नाच गई ।

जब वृद्ध खाकर उठा, तो वह मुस्करा रहा था । बाद्यार ने दक्षिणा देने को जब हाथ उठाया, तो वृद्ध ने अंजलि लेकर सब ब्राह्मणों को बांटने का इशारा किया । प्रेतत्व धन पर हट गया । पच्चीस रुपए ब्राह्मणों में बंट गए ।

वृद्ध चला गया । क्रिया-कर्म सम्पन्न हो गया । घर-घर नयनाचारी की तारीफ होने लगी ! किन्तु राजम ने गोपालन और कोमल की बदनामी करनी शुरू कर दी ।

वृद्ध घर पहुंचते ही गध्या पर जा लेटा, और जाने क्यों इतना अशक्त हो गया कि उठ नहीं सका । तीसरे दिन जब राजम, गोपालन घर पर नहीं थे, हाथ-पैर फेंककर वह अपने विश्वासों पर बलि हो गया, मर गया ।

घर आकर राजम और गोपालन ने देखा, और रो-धोकर उसका दाह कर दिया । किन्तु क्रिया-कर्म के लिए रुपए नहीं थे ।

गोपालन कोमल के सामने उपस्थित हुआ ।

‘सुना आर्यंगार ! बहुत दुख हुआ !’ कोमल ने कहा—‘तुम्हारे पिता मनुष्य नहीं देवता थे !—और बिना मांगे ही सौ रुपए निकालकर दे दिए ।

गोपालन रो दिया ।

कोमल ने कहा—‘अर्यंगार, एक बात कहूं ? बुरा तो नहीं मानोगे ?

‘नहीं ।’ गोपालन ने उसकी ओर देखते हुए कहा ।

‘जानते हो, दुनिया हमें बदनाम कर रही है ?’

‘मालूम है !’ गोपालन ने छोटा-सा उत्तर दिया ।

‘डरते तो नहीं ?’ उसने फिर पूछा ।

‘नहीं ! डरूं क्यों ? क्या हमारे अनुचित सम्बन्ध है ?’

‘अनुचित सम्बन्ध तो है, आर्यंगार ! उसे तुम यों नहीं मिटा सकते !’

कोमल ने उसके चेहरे पर आंखें गड़ाकर कहा ।

‘क्या कह रही हो ?’ गोपालन का स्वर कांप गया ।

‘क्यों?’ कोमल ने कहा—सम्बन्ध क्या शारीरिक होने से ही अनुचित होता है, मानसिक होने से नहीं?

‘वह तो केवल धारणामात्र होती है,’ उमने सकपकाकर कहा।

कोमल हंस पड़ी। उसने सिर हिलाकर कहा—तो तुम्हारा प्रेम, उन्माद, पागलपन, सब केवल एक साधारण धारणा थी, जो आई और चली गई? फिर जान देने पर क्यों तुले थे?

गोपालन लजा गया। कोमल ने ही फिर कहा—हम बदनाम तो हो ही गए! अब और किसीपर तो मैं विश्वास कर नहीं सकती। तुम्हारा ही भरोसा है। तुम्हीं ज़मींदारी का काम संभालो। जानते हो, मैं औरत हूँ। सब काम अकेले नहीं कर सकती।

गोपालन चुप रहा। अर्थात् उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

राजम को चैन न आना था, न आया। पहले गोपालन रोटियों के लिए उसका मुहताज था, पर अब नहीं रहा। ज़मींदारी का इन्तज़ाम करता, और बड़ी खूबी से करता। सारा रुपया कोमल को दे देता। वह जो देती, ले लेता। बात पलट गई। पहले वह रोटियों को तरसता था, अब वह राजम को उल्टे रुपया देता। पहले राजम के दस काम करता था, अब राजम अकेली पड़ गई। इसीसे जब कोई अधिकार जताने और लड़ने को नहीं रहा, तो वह व्याकुल हो उठी। सुहागिन वह अब भी थी, किन्तु कुंकुम लगाकर क्या पत्थरों पर सिर पटकती? वृद्ध जहां-जहां बैठता था, वहां-वहां उसे बैठकर एक विश्रान्ति की सांत्वना सी मिलती। वृद्ध की मृत्यु का एकमात्र कारण गोपालन को समझकर वह और भी उसके विरुद्ध हो गई। ढल चली थी, मगर अभी बूढ़ी तो नहीं हुई थी। धीरे-धीरे उसको इस बात से सन्तोष होने लगा कि कोमल और गोपालन के सम्बन्ध की बात घर-घर चल रही थी। सब उस पाप को रोकना चाहते थे, किन्तु कोई सिलसिले का छोर हाथ में नहीं आता था कि पकड़कर खींच लें, और सारा पर्दा सर से खुल जाए।

कोमल ने गोपालन को देखा, और चिंतित स्वर में बोल उठी—

सुना, आर्यंगार ? अब तो रहना भी कठिन होता जा रहा है ! ऐसे कब तक चलेगा ?

गोपालन ने पानों पर चूना लगाते हुए कहा—तुममें तो साहस था न ? फिर डरती क्यों हो ?—कहते हुए उसने सुपायी मुंह में डालकर आठों पानों को मुंह में भर लिया, और चवाने लगा ।

कोमल कुछ देर तक चुप खड़ी रही । फिर बोल उठी—डरती हूं ! सच, आर्यंगार, मैं अपने मन से डरती हूं ।—वह हठात् चली गई ।

गोपालन के हृदय में एक कील-सी चुभ गई ।

सांभ बीत गई । दीपक जलने लगे । उनके धूमिल प्रकाश में गोपालन ने देखा, कोमल चुपचाप खड़ी थी ! वह उसके पास चला गया ।

कोमल उसे देखकर सिहर उठी । कुछ देर चुप रहकर उसने कहा—मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है ! क्यों ?

गोपालन ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया । फिर मुंह खोला, और बन्दकर लिया ।

‘कुछ कहना चाहते थे ? कहते क्यों नहीं ? मैं क्या तुमसे कुछ कहती हूं ? तुम्हारी ही दया से तो सब काम ठीक तरह चल रहे हैं !’ कहने को तो कह गई, पर फिर नीचे का होंठ दांत से काट लिया ।

गोपालन ने वह सब नहीं देखा । वह बोला—दया तो तुम्हारी है, कोमलम्मा ! तुम्हारे पास रहकर मुझे जितना सुख मिलता है उतना और कहीं भी नहीं मिलता ।

‘क्यों ?’ उसने उसे और उसकाया ।

‘तुम मुझे बड़ी अच्छी लगती हो !’ गोपालन ने कहा—सच, बहुत अच्छी लगती हो !

देखा, वैधव्य में भी वह वैसी ही सुन्दर थी, और उसकी मादकता अब भी धीरे-धीरे उस पर रँग रही थी । गोपालन का हृदय आतुर हो उठा । घुंघला प्रकाश एक नशा सा दे रहा था । दोनों आँखें खोलकर एक दूसरे को ऐसे देखते रहे, जैसे चार दीपक और जल उठे हों !

गोपालन ने आन्दोलित होकर कोमल का हाथ पकड़ लिया। कोमल ने बेसुध सी होकर आंखें मूंद लीं। किन्तु सहसा वह हाथ झटककर खड़ी हो गई।

गोपालन चौककर पीछे हट गया। कोमल की आंखों में क्रोध की भीषण ज्वाला घघक रही थी। वह ठठाकर हंस पड़ी। गोपालन भय से कांप उठा।

कोमल ने उसकी ओर उंगली उठाकर कहा—तुम ! तुम एक स्त्री को अकेली जानकर उसका अपमान करना चाहते थे ? तुम एक विधवा को अपवित्र करना चाहते थे ? तुम कहोगे शरीर से क्या होता है ? किंतु मन ? मन भी तो तुम्हारा सांप जैसा काला और विषैला है ! तुम, जिसे मैंने दया करके इतने दिन खिलाया, मेरी जड़ काटने पर उतारू हो गए ! पापी !

गोपालन जड़ हो गया। चेहरे पर काला रंग पुत गया।

किन्तु कोमल चुप नहीं हुई। वह बोलती ही गई—घर पर तुम कुत्तों की तरह भाभी की दया पर पड़े थे। एक दिन तुमने मेरी ओर हाथ बढ़ाया था, किन्तु मैंने तुम्हें फिर भी अपना स्नेह दिया ! और अन्त में तुमने यह चाहा कि मैं कहीं की भी न रहूं !

गोपालन का कंठ अवरोद्ध हो गया। वह कुछ भी नहीं कह सका।

कोमल उसके पास आ गई। उसकी आंखों में आंसू थे। उसने रोते-रोते उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—मैं जानती हूं, आशंकार। समुद्र-तीर की बालू पानी सोखती नहीं, तो क्या भीगने से बची रहती है ? तुमने मेरे पीछे ही सब कुछ त्याग दिया ! नाम भी छोड़ दिया ! मैं जानती हूं, तुम्हारे मन में मेरे लिए अटट, अक्षय स्नेह है। एक काम करोगे ?

गोपालन पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा।

कोमल ने फिर कहा—जाओ, गोपालन ! आज मैंने पहली बार तुम्हारा नाम लेकर पुकारा है ! सदा के लिए इस देश से चले जाओ !

कौन है तुम्हारा यहां जिसके लिए रहना चाहते हो ? आग और फूस साथ नहीं रह सकते गोपालन ! मुझे डर है कि मैं इस अग्नि में भस्म हो जाऊंगी ! मैं तुमसे भीख मांगती हूं, मुझे अकेली तड़पने दो, जाओ ! कहीं सुदूर चले जाओ ! विवाह करके सुखी जीवन बिताओ !...

जाओगे ?

गोपालन ने सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया । वह निश्चल खड़ा रहा ।

कोमल ने कमर से नोटों की एक गड्डी निकालकर कहा—यह लो, गोपालन ! ले लो इसे !

किन्तु गोपालन ने नोटों को नहीं छुआ । वह द्वार की ओर चलने लगा ।

कोमल ने हठ करते हुए कहा—लेते जाओ इन्हें, नहीं तो दर-दर भटकोगे !...ब्राह्मण के बेटे को भीख लेने में लाज क्यों ?

गोपालन ने फिर भी उत्तर नहीं दिया । वह बढ़ता ही गया ।

कोमल ने फिर कहा—भूखों मर जाओगे ! यहीं कौन मालिक थे, जो इतनी अकड़ दिखा रहे हो ? मुझपर एहसान रहने दो ! तुम दरिद्र हो...

किन्तु गोपालन चला गया ।

कोमल ने कुछ देर इधर-उधर देखा, और फिर फूट-फूट कर रो उठी ।

अनेक वर्ष बीत गए थे । उसका हृदय अब भी अपमान से तड़प उठता था ।

गोपालन ने आंखें खोलकर देखा । वही प्राचीन अंधकार अब भी छा रहा था । वह उठा, और छत पर घूमने लगा । सामने ही कुआं था नीरव । पेड़ भी निस्तब्ध थे । दूर किसी प्राचीनकाल का वह ऐतिहासिक खंडहर भी मौन था । चारों ओर भयानक नीरवता थी ।

‘कहां है जीवन की ममता का उन्माद ?’ हृदय अहंकार से पूछ बैठा ।

दूर कहीं फुलवाड़ी के किसी पेड़ पर बैठा उल्लू हंस उठा; एक डरावनी हंसी, जो उस प्राचीन मन्दिर की ईंटों से टकरा गई ।

और गोपालन विक्षुब्ध-सा देखता रहा, अविश्वास के कगारों पर खड़ा, अपनी ही यंत्रणा में घुटा-सा, चुपचाप ।

आज वह परदेस में है । कहीं कोई उसका नहीं । जीवन यंत्र सा चलता जा रहा है । इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं ।

घिसटता कंबल | ४

इस कहानी के सम्बन्ध में—

निम्नमध्यवर्ग के जीवन की एक कहानी है। शायद ही मैंने इतनी सफल कोई कहानी लिखी हो।

पात्र इसमें बहुत कम हैं, परन्तु इसमें ऐसा कचोटता व्यंग्य है जो पात्रों को छूता हुआ पूरे समाज से जाकर टकराता है। और यही इसकी वह सामर्थ्य है जिसने ऐसी बहुओं को जाकर हिला दिया है जिनकी दाल नहीं सीझती !

जिन आलोचकों ने इसे पढ़ा है, इसको माना है। जिनका उद्देश्य होता है कि अपने पूर्वाग्रह को प्रगट करने के लिए पढ़ें-लिखें उन्होंने देखकर भी चुप रह जाना ठीक समझा है। और जिन्होंने नहीं पढ़ा, उन्होंने बिना पढ़े राय दे दी है।

विपिन का ज्वर एक प्रतीक है और रागिनी उसकी साथिन है। अन्य बातों पर यहां एक और चीज छाई हुई है; वह है इसकी भाषा की चुभने, जिसमें असामान्य रूप से आकर्षित करने की शक्ति है। अभिव्यक्ति और उपमा के क्षेत्र में यह कहानी आज के बहुतेरे प्रयोगों की जननी है, क्योंकि यह सन् '४५ या '४६ ई० में छपी थी

जब इस ओर लोगों की दृष्टि नहीं गई थी कि पात्र, वातावरण, चरित्र-चित्रण परिस्थितियों में ही नहीं रह जाते, वे कुछ रेखाओं में ही तैयार हो सकते हैं चाहे वे कितनी ही संक्षिप्त क्यों न हों ।

विवशता की घुमड़न इसमें है, क्योंकि घर की बहुत-सी बहुओं ने इसमें अपने जीवन की तस्वीर पाई है और इसे स्पष्ट ही कहा भी है । यों भी यह कहानी अपने युग का एक चित्र है ।

मेरा दृष्टिकोण रहा है कि साहित्य में लेखक एक ही बात को बार-बार दुहराए नहीं । अगर सामर्थ्य न हो तो अपना वह टाट ही उलट दे । वे लोग जो अपनी शक्ति को चरमबिंदु मानकर, दूसरों की शक्ति को उसीसे मापते हैं वे न तो इस वैविध्य की सीमाओं को समझते हैं, न छू पाते हैं । मैं जब बंबई में था, तब एक प्रसिद्ध अभिनेता ने बड़े बुख से मुझसे कहा था : कलाकार को स्वतंत्रता नहीं । एक बार वह जिस तरह का रोल करके प्रसिद्धि प्राप्त करता है, हर बार उसे उसी तरह का रोल करना ही पड़ता है, क्योंकि डिस्ट्रिब्यूटर तब ही प्रोड्यूसर की फ़िल्म उठाते हैं । एक सीमा तक यह अभिनेता पर लागू भी हो सकता है क्योंकि प्रायः वह अनुकरणगतप्राण होता है । परन्तु हिंदी के आलोचक उन डिस्ट्रिब्यूटरों से कम नहीं । आप कुछ और लिख दीजिए तो कहेंगे, 'आपने जो विषय पहले उठाया था—यदि उसे ही चलाते तो अच्छा रहता ।' यानी आगे अच्छा रहता । यह नहीं कि वह पहले का ही अच्छा था । या फिर बड़े अफ़सोस से कहेंगे, 'यह ठीक लिखा है, मगर अच्छा होता वे इसे ज़रा और सोचकर लिखते ।' या—'यह लिखा है, पहले इससे अच्छा लिखने की आशा थी इनसे, परंतु अब लगता है, भविष्य में यह भी नहीं लिख सकेंगे ।'

घिसटता कंबल ऐसों के लिए एक चुनौती है, क्योंकि जब कंबल घिसटता है तब धूल में लीक खींचता है और जब मुड़कर उसे देखा जाता है, तब वह लटकता हुआ नहीं मिलता ।

इसमें मैंने जीवन के दो शाश्वत सत्य सहज में प्रगट किए हैं; प्रेम ही इस जीवन का एकमात्र आधार है । और दूसरा है; कि जीवन उठाकर नहीं फेंका जा सकता—जैसा है, वैसा ही निबाहना भी पड़ता है ।

आशा है अब इसे लोग समझ सकेंगे । न समझकर लोग कहें समझ गए, वह ज्यादा अच्छा था । राम है कि अब बिना समझे लोग सिर हिलाकर कहेंगे—उंह ! इसमें क्या हूं !

उस नासमझी का मैं क्या जवाब दूंगा ?

धिसटता कंबल

प्रभात की जिस बेला में कोयल का बोल सुनाई देता है रागिनी उसे अपने सुहाग का एकमात्र शुभ लक्षण समझकर हर्ष से गद्गद हो उठती है। दूर एक पेड़ है, वरना इस मुहल्ले में पत्थरों, ईंटों और उनकी कठोरता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह दूर-दूर तक देखती है। कहीं कुछ भी नहीं दिखाई देता। लौटकर जाती है, चूल्हे पर पानी रख देती है और घुटनों पर सिर रखकर सोचने लगती है। कुछ भी नहीं है चिन्ता करने के योग्य, क्योंकि जो है वह चिन्ता ही है, चिन्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

पानी में से एक आवाज आ रही है। उसकी ओर देखा। कुछ नहीं, उबलने की ध्वनि आ रही है। तो क्या इस जीवन में यह जो विभिन्न ध्वनियां सुनाई दे रही हैं वे और कुछ नहीं केवल एक उबाल का उपहास है जिसका रूप धीरे-धीरे धुआं बनकर उड़ता जा रहा है, ताकि शून्य में अपने आप लय हो जाए? कोई समझाने का प्रयत्न न करे, क्योंकि समझकर चलना कितना कठिन है। अच्छा है वह बटोही, जो नहीं जानता कि जंगल में शेर-चीतों के अतिरिक्त बटमार भी हैं, लुटेरे भी हैं...

और रागिनी ने पतीली उतारकर रख दी। एक विवाह और विवाह के बाद जैसे यात्री के कंधे पर पड़ा कम्बल जो लटकता रहता है, मैला होता रहता है... कोई कहे कि मुसाफिर देख तो पीछे तू अपने ही निशान

मिटा रहा है और लौटकर देखते समय कम्बल भी उठ जाता है। यात्री समझता है कि संसार उससे उपहास कर रहा था क्योंकि संसार को अपनी होनता का कितना विक्षोभ है, अपदार्थ निर्वीर्यता !

याद आ रहा है धीरे-धीरे एक बीता हुआ इतिहास, जिसे इतिहास न कहकर विषाद की एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा कहा जाए तो क्या कुछ अनुचित है ?

दाल भी कितनी खराब है कि कमबख्त गलती ही नहीं। जाग्रो बाजार, बनिया कहेगा—इससे सस्ती तो है ही नहीं।

रागिनी भुंभला उठी। एक घंटा तो होने को आया। कोई हद है...

फिर उवाल। जमीन की यह फसल इतनी कठोर है, फिर स्वयं वह ही कैसे इतनी जल्दी दब गई ? क्योंकि वह मनुष्य है ?

रागिनी मुस्कराई। कैसी बर्बरता है। लेकिन प्यार कहां है आज-कल ?

उफ ! कैसी मिर्चों की भांस उठ रही है। सौ बार सोच चुकी हूं कि जाकर पड़ोसिन से कहूं कि बहिन एक घर में रहने हैं तो समझोता करके ही रहना होगा। नहीं भाती हमें तुम्हारी यह बात कि मिर्चें हवा के रुख में कूटने बैठ जाती हो ?

पड़ोसिन बड़बड़ाती है। आजकल के स्कूलों की छोकरियां, जैसे परमात्मा ने इन्हें औरत क्या बनाया, दुनिया पर एक अहसान-सा कर दिया...

रागिनी का वह स्कूल का जीवन भी कितना भला था। वह मास्टरनियां कहां मिलेंगी अब ? तब वह प्रेम करना चाहती थी। हर महीने 'माया' पढ़ती थी। पढ़ने को तो मन अब भी चाहता है, क्योंकि उसमें वह है जो वैसे नहीं होता, हो नहीं सकता...

दाल तो नहीं ही गलेगी। दो पहर चढ़ जाएगी, दिन ढल जाएगा...

विपिन ने प्रवेश किया। नहा-धोकर पट्टे पर आसन ग्रहण किया और कहा—क्यों खाना बन गया ?

‘बन कहाँ से गया ? दाल तो ऐसी लाए हो जैसे भानमती का पिटारा। इसके सीझने की बेला आए, न उसके खतम होने की।’

मां-बाप से नहीं पटी है तभी तो दोनों अलग रहते हैं। शहर में नौकरी लग गई है। यह वही कहानी है जो आज बरसों से होती चली आई है। क्योंकि दोनों एक दूसरे को चाहते हैं। रागिनी नहीं चाहती उसके पति पर सबका अधिकार हो। जो उसका स्वामी है, वह उसकी दासी है तो इसलिए न कि अधिक से अधिक उसकी स्वामिनी भी हो सके ?

एक मुस्कान की कटार चमकती है, दूसरे की मुस्कान कटार बनकर उस स्नेह की मार को रोकती है, फिर दुधारा इधर भी काटता है, उधर भी, और वह पैनी गर्म-गर्म लोहे की टुकड़ी इधर भी उतरती है उधर भी, और वह उनकी परवशता की घृणा का प्यार है, जैसे बहेलिए से डरे हुए दो पक्षी एक दूसरे के पंखों में सिर छिपाकर गर्म होने का यत्न करते हैं।

‘हूँ’ विपिन का स्वर भारी है—तो गोया दालवाले को भी हमारा साला होना चाहिए।

रागिनी चिढ़ गई। उसने कहा—जी हाँ, साला नहीं तो भाई होना ही चाहिए।

एक तरेर। रस्सी खिंच गई है। उसपर अभिमान नट बनकर अपना कौशल दिखाता हुआ चल रहा है, जैसे सैनिक शिक्षा पाते समय हाथों से पकड़कर झूलते हुए रस्सा थामकर नदी पार करते हैं।

पति और पत्नी। दास और दासी। अभिमान और ऐंठन। अच्छी भाषा में देवता और पुजारिन, एक रुपया और चवन्नी।

विपिन कहता है—तो मैं जा रहा हूँ। सरकार की नौकरी है। वहाँ जाने के लिए जरूरी नहीं है कि दाल खाकर ही जाना चाहिए।

‘तुम्हें मेरी कसम है । खाने के लिए सारा जीवन है । वही नहीं है तो फिर सारा संसार किसलिए है ?’

और विपिन कहता है—खाने को या तो है ही नहीं या है भी तो उसके खाने का समय नहीं है ।

रागिनी के मुंह पर उदासी चढ़ती है, जैसे पारदर्शी फाउन्टेनपेन में स्याही चढ़ती हुई दिखाई देती है...

विपिन देखता है, कितना क्षुद्र है वह ! संसार में अनेक कार्य हैं, अनेक-अनेक महापुरुष हैं, अनेक-अनेक शक्तियां हैं, किन्तु वह कहीं भी कुछ नहीं है । उसकी असमर्थता ऐसी है जैसे टूटे हुए गिलास के शीशे के टुकड़े । वह केवल घिसटता चला जा रहा है ।

उन आंखों में एक उदास छाया है, उनमें दर्द है, प्राणों की कसक है । व्यक्ति का प्यासा हृदय बुला रहा है, किन्तु घड़ी में दस बज रहे हैं, जैसे प्रेम की सीता की ओर दस मुखों से रावण बोलता हुआ देख रहा हो, घूर रहा हो...

शाम हो गई है । फिर वही दाल है जो सीझना नहीं चाहती । जानती है कि वह सीझने के ही लिए है कि दुनिया उसे खाकर पचा जाए, फिर भी नहीं सीझती । कैसी पथरीली जिद है !

रागिनी फिर उठ गई । जाकर मुंह धोया । तौलिए से मुंह पोंछकर माथे में बिन्दी लगाई ।

एक बार दरपन में मुख देखा । यह कोई पद्मिनी का-सा रूप नहीं । किन्तु फिर भी इसमें वह कुछ तो है ही जो अपने मन के सूनपन को अपने आप गुदगुदा दे, जिसे देखकर संसार कह सके इसे कुछ चाहिए, कुछ चाहिए ।

विपिन के सिर में दर्द है । वह लेटा हुआ है । रागिनी ने कमरे में जाकर धीरे से लालटेन जला दी, सिरहाने बैठकर सिर पर हाथ रखा ।

कुछ हलका-सा ज्वर था। गर्म शरीर अच्छा लगा। हाथ फिराकर कहा—
क्यों बदन गर्म है? कुछ हरारत लगती है?

‘हां! आज कुछ ज्यादा होगी। कोई ऐसी बात नहीं। तुम जानती हो आठ घंटे की ड्यूटी, जिसमें सोलह घंटे की डांट...’

‘क्या मतलब है?’ रागिनी ने चौंककर पूछा।

‘मेरे भाई, दो आदमी के आठ और आठ सोलह ही तो हुए?’

दोनों हंस पड़े। इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। कर भी क्या सकते हैं। क्लर्क छोड़ देगा तो कोई दूसरा पतिगा शमा पर जलने आ जाएगा। दिल्ली का विराट नगर है। इस छोटे क्वार्टर में कितना अपनापन है? कुछ ऐसी बात भी नहीं कि हम क्या किसीसे कम हैं?

रागिनी कुछ नहीं बोलती। चुपचाप सिर पर हाथ फिराती रहती है जैसे कोई चाय की चिकनी प्याली है। दूसरी बार लगता है कहीं दाल पर से ढक्कन तो नहीं उतार रही।

मन एक केन्द्र है जिससे जगह-जगह के लिए बाण छूटा करते हैं।

मांस का हाथ है, वही मनुष्य देह की तपिश से आकर्षित हो रहा है।

रागिनी दोनों हाथों से उसका मुख अपनी ओर मोड़कर कहती है—
तो क्या हम लोग कभी भी सुखी नहीं रहेंगे?

सुख! एक दर्दनाक सपना, जिसके अन्त में जैसे मनुष्य चिल्लाकर बिस्तरे से उठकर भागता है।

विपिन धीरे से हंसा। उसने हल्की सी मुस्कराहट से कहा—पगली! सुख और किसे कहते हैं?

रागिनी के मन पर कोई सात्वना का घड़ा उड़ेल रहा है।

विपिन ने कहा—तुम समझती हो, धन ही हमारे सुखों का मोल है? नहीं रागिनी! प्रेम ही हमारे जीवन की सात्वना है, एक बड़ा भारी आधार है। यदि मैं इस दुखी संसार में तुमसे छूट जाऊं तो तुम समझती हो मैं यह अपमान का जीवन बिता सकूंगा?

रागिनी ने समझा। मन के किसी भीतरी भाग में प्रश्न हुआ, ‘तो

क्या यह स्नेह किसी घोर घृणा का परिणाम है ?

विपिन ने उसकी गोद में सिर रखकर कहा—रानी ! डूबते को तिनके का सहारा चाहिए, किनारे पर खड़ा होकर शोर मचाने वाला तो कभी मदद नहीं देगा !

तो क्या दोनों ही डूब रहे हैं । रागिनी ने उसका हाथ अपनी मुट्ठी में दाब लिया । विपिन को लगा जैसे बिजली का तार उसके हाथ से जकड़ गया हो ।

उसके बाद एक बुखार है । रागिनी ने उसके बालों पर स्नेह से हाथ फेरा जैसे रेशम का कीड़ा अपने मुंह से उगले रेशम में चहलकदमी कर रहा हो ।

देर तक वे एक दूसरे का मुख देखते हैं । पीलापन तो है ही, कितना असन्तोष भी है । यदि समाज का ढांचा इसके लिए दोषी है तो देवता के सामने इनकी बलि क्यों हो रही है ।

‘रागिनी !’ विपिन ने कहा—कितना अंधियारा छा गया है बाहर ?

रागिनी ने मुख मोड़कर कहा—तुम जो वह ब्लाउज का कपड़ा देख आए थे, लाए नहीं ?

‘अच्छा, वह जो वह सिखनी पहनती है ?’

‘हां ! क्यों जी यह सिख तो इतनी ही तनखाह में, ऐसी हालत में ही बड़े खुश रहते हैं । इनके साथ क्या बात है ?’

विपिन हंसा, स्नेह से उत्तर दिया—वे ऊपर के दिखावे के जो ज्यादा शौकीन होते हैं । वे सोचते ही कम हैं ।

‘तो तुम इतना सोचते क्यों हो ? हम क्या बिना सोचे सुखी हो सकते हैं ?’

विपिन चुप है । लगता है जैसे दीपक फक करके बुझ जाएगा !!!

घड़ी बज उठी है । दाल सीझ चुकी होगी । वह उठी । केवल बैठे रहने ही से तो कल का जीवन नहीं चलेगा । सुबह-शाम खाना पकाने के लिए हैं, बाकी समय पचाने के लिए और विकृत मल को निकालकर

अपने को स्वच्छ समझने की प्रतारणा के लिए ।

वह उठ खड़ी हुई । द्वार की ओर चली । मुड़कर देखा, विपिन करवट बदल रहा था । उसकी पीठ इधर थी । वह विश्रांत था । बीच में दो शब्दों को मिलाकर एक करने वाली वह छोटी लकीर अब नहीं बन रही थी । रागिनी ने जाकर देखा—दाल अभी भी सीझ ही रही थी, सीझी नहीं थी...

मन में आया उठाकर फेंक दे, किन्तु साहस नहीं हुआ । जीवन भी तो इस दाल के ही समान है, उसे फेंक दे उठाकर, किन्तु इतनी सामर्थ्य है कहां ! और रात को भी कोयल बोल ही उठती है कभी-कभी ।

इस कहानी के सम्बन्ध में—

कहानी एक गूंगे लड़के की है। उसे एक मां का हृदय रखने वाली स्त्री दया की भावना से अपने यहां नौकर रख लेती है। गूंगा बोलता नहीं, सुनता नहीं, पर काम करता है। वह काम छोड़-छोड़कर भी भाग जाता है। परंतु उसमें ममता है, अनुभूति है और है मनुष्यत्व। यही इस कहानी का वह सत्य है जो व्यक्ति से लेकर राष्ट्रों तक को छूता है। हमारी मनुष्यता अपने-पराए का भेद कैसे करती है, सत्य किस प्रकार ज्ञात रहकर भी सर्वत्र समता नहीं पाता, इसकी चेतना है। कहानी में एक गुण होना आवश्यक है। उसका अंत बिल्कुल ही आकस्मिक होना चाहिए, ऐसा कि जो सोचने के लिए छोड़ जाए। गूंगे में ऐसी तड़पन है कि बार-बार मां के हृदय की झकोर हमारे सामने आती है और इसमें आते हैं नैतिकता के मानदंड—

मनुष्य की करुणा की भावना उसके भीतर गूंगेपन की प्रति-
च्छाया है...

और चमेली सोचती है, उसने उस दिन भीख ली थी, या

ममता की ठोकर को निस्संकोच स्वीकार कर लिया था...

—शायद इसीलिए कि उसे बसंता को दण्ड देना ही चाहिए, यह उसको अधिकार है।

उसने एक पशु पाला था जिसके हृदय में मनुष्यों की सी वेदना थी...

...वह सड़क के लड़कों से पिटकर आया था, क्योंकि गूंगा होने के नाते वह उनसे दबना नहीं चाहता था... दरवाजे की दहलीज पर सिर रख वह कुत्ते की तरह चिल्ला रहा था...

यह है इस कहानी की विद्रोही आत्मा। एक कुत्तित सम्राज-शास्त्री ने इसपर लिखा—प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सब राष्ट्रों को गूंगा कहकर अपनी पलायनवादी प्रवृत्ति का परिचय दिया है, वे जुभारू जनता की ओर नहीं देखते !

जीवन में दुख एक सत्य है। क्या ऐसे प्राणी साहित्य के लिए त्याज्य हैं ? ह्यूगो ने कुबड़े का चित्र दिया था—व्यापक और महान्। वह भी जुभारू जीवन का यांत्रिक चित्र नहीं था। क्या है जुभारू ? असीम वेदना का प्रतिकार सबसे बड़ा संघर्ष है, जो इस सत्य को नहीं जानता वह नितांत उपेक्षणीय है।

गूंगे में ऐसी हृदय को रेत देने वाली पीड़ा है जो 'प्रसाद' के मधुआ में अमर हो चुकी है। घुटन तो वह, जो भर जाए, और आगे ले चले। मैंने देखा है, पाठकों ने इसे पढ़ा, और हठात् गंभीर हो गए। उनके सामने जैसे एक नया चित्र आ गया। केवल राज-नैतिक ढोल बजाने वालों ने इस कहानी को उपेक्षा से देखा। सच तो यह है कि जिन लोगों ने मुझे तथाकथित प्रगतिशील लेबुलों में ढूँढने की चेष्टा की, वे निराश हुए, और अंत में मुझे पलायनवादी घोषित किया गया। लेकिन मेरे सामने जीवन का महान् संदेश है और उसे ही मैंने सर्वत्र चित्रित करने की चेष्टा की है।

गूंगे की चमेली इसीलिए ऐसी ममता की जगार लाती है जो कहीं-कहीं दिखाई दिया करती है।

गूंगे

‘शकुन्तला क्या नहीं जानती ?’

‘कौन ? शकुन्तला ! कुछ भी नहीं जानती ।’

‘क्यों साहब ? क्या नहीं जानती ? ऐसा क्या काम है जो वह नहीं कर सकती ?’

‘वह उस गूंगे को नहीं बुला सकती ।’

‘अच्छा बुला दिया तो ?’

‘बुला दिया !’

बालिका ने एक बार कहने वाली की ओर द्वेष से देखा और चिल्ला उठी—दूँ दे !

गूंगे ने नहीं सुना । तमाम स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं । बालिका ने मुँह छिपा लिया ।

जन्म से वज्र बहुरा होने के कारण वह गूंगा है । उसने अपने कानों पर हाथ रखकर इशारा किया । सब लोगों को उसमें दिलचस्पी पैदा हो गई, जैसे तोते को राम-राम कहते सुनकर उसके प्रति हृदय में एक आनंदमिश्रित कुतूहल उत्पन्न हो जाता है ।

चमेली ने उंगुलियों से इंगित किया—फिर ?

मुँह के आगे इशारा करके गूंगे ने बताया—भाग गई । कौन ?

फिर समझ में आया। जब छोटा ही था तब 'मां' जो घूँघट काढ़ती थी, छोड़ गई। क्योंकि 'बाप', अर्थात् बड़ी-बड़ी मूँछें, मर गया था। और फिर उसे पाला है—किसने ? यह तो समझ में नहीं आया, पर वे लोग मारते बहुत हैं।

करुणा ने सबको घेर लिया। वह बोलने की कितनी जबर्दस्त कोशिश करता है ! लेकिन नतीजा कुछ नहीं, केवल कर्कश कांय-कांय का ढेर। अस्फुट ध्वनियों का वमन, जैसे आदिम मानव अभी भाषा बनाने में जी जान से लड़ रहा हो।

चमेली ने पहली बार अनुभव किया कि यदि गले में काकल तनिक ठीक नहीं हो तो मनुष्य क्या से क्या हो जाता है। कैसी यातना है कि वह अपने हृदय को उगल देना चाहता है किंतु उगल नहीं पाता।

सुशीला ने आगे बढ़कर इशारा किया—मुंह खोल ! और गूंगे ने मुंह खोल दिया। लेकिन उसमें कुछ दिखाई नहीं दिया। पूछा, गले में कौआ है ? गूंगा समझ गया। इशारे से ही बता दिया—किसीने बचपन में गला साफ करने की कोशिश में काट दिया। और वह ऐसे बोलता है जैसे घायल पशु कराह उठता है, शिकायत करता है जैसे कुत्ता चिल्ला रहा हो और कभी-कभी उसके स्वर में ज्वालामुखी के विस्फोट की सी भयानकता थपेड़े मार उठती है। वह जानता है कि वह सुन नहीं सकता। और बताकर मुस्कराता है। वह जानता है कि उसकी बोली को कोई नहीं समझता फिर भी बोलता है।

सुशीला ने कहा—इशारे गजब के करता है। अक्ल बहुत तेज है।

पूछा—खाता क्या है, कहां से मिलता है ?

वह कहानी ऐसी है जिसे सुनकर सब स्तब्ध बैठे हैं। हलवाई के यहां रात भर लड्डू बनाए हैं; कढ़ाई मांजी है, नौकरी की है, कपड़े धोए हैं, सबके इशारे हैं, लेकिन—

गूंगे का स्वर चीत्कार में परिणत हो गया। सीने पर हाथ मार-कर इशारा किया—हाथ फैलाकर कभी नहीं मांगा, भीख नहीं लेता;

भुजाओं पर हाथ रखकर इशारा किया—मेहनत का खाता हूँ, और पेट बजाकर दिखाया इसके लिए, इसके लिए...

अनाथाश्रम के बच्चों को देखकर चमेली रोती थी। आज भी उसकी आँखों में पानी आ गया। वह सदा से ही कोमल है! सुशीला से बोली—इसे नौकर भी तो नहीं रखा जा सकता।

पर गूंगा उस समय समझ रहा था। वह दूध ले आता है। कच्चा मंगाना हो थन काढ़ने का इशारा कीजिए; औटा हुआ मंगाना हो, हल-वाई जैसे एक बर्तन से दूध दूसरे बर्तन में उठाकर डालता है, वैसी बात कहिए। साग मंगाना हो गोल-मोल कीजिए या लम्बी उंगली दिखाकर समझाइए,.....और भी...और भी...

और चमेली ने इशारा किया—हमारे यहां रहेगा?

गूंगे ने स्वीकार तो किया किंतु हाथ से इशारा किया—क्या दोगी? खाना?

‘हां’ चमेली ने सिर हिलाया।

‘कुछ पैसे?’

चार उंगलियां दिखा दीं। गूंगे ने सीने पर हाथ मारकर जैसे कहा—तैयार हैं। चार रुपए!

सुशीला ने कहा—पछताओगी। भला यह क्या काम करेगा?

‘मुझे तो दया आती है बिचारे पर,’ चमेली ने उत्तर दिया—न हो बच्चों की तबियत बहलेगी।

घर पर बुआ मारती थी, फूफा मारता था, क्योंकि उन्होंने उसे पाला था। वे चाहते थे कि बाज़ार में पल्लेदारी करे, बारह-चौदह आने कमाकर लाए और उन्हें दे दे, बदले में वे उसके सामने बाज़रे और चने की रोटियां डाल दें। अब गूंगा घर भी नहीं जाता। यहीं काम करता है। बच्चे चिढ़ाते हैं। कभी नाराज नहीं होता। चमेली के पति सीधे-सादे आदमी हैं। पल जाएगा बेचारा, किंतु वे जानते हैं कि मनुष्य की

करुणा की भावना उसके भीतर गूंगेपन की प्रतिच्छाया है, जब वह बहुत कुछ करना चाहता है, किंतु कर नहीं पाता । इसी तरह दिन बीत रहे हैं ।

चमेली ने पुकारा—गूंगे !

किंतु कोई उत्तर नहीं आया, उठकर ढूँढ़ा—कुछ पता नहीं लगा ।

बसंता ने कहा—मुझे तो कुछ नहीं मालूम ।

‘भाग गया होगा’, पति का उदासीन स्वर सुनाई दिया । सचमुच वह भाग गया था । कुछ भी समझ में नहीं आया । चुपचाप जाकर खाना पकाने लगी । क्यों भाग गया ? नाली का कीड़ा ! एक छत उठाकर सिर पर रख दी फिर भी मन नहीं भरा । दुनिया हंसती है, हमारे घर को अब अजायबघर का नाम मिल गया है...किसलिए...

जब बच्चे और वह भी खाकर उठ गए तो चमेली बची रोटियां कटोरदान में रखकर उठने लगी । एकाएक द्वार पर कोई छाया हिल उठी । वह गूंगा था । हाथ से इशारा किया—भूखा हूँ ।

‘काम तो करता नहीं, भिखारी !’ फेंक दीं उसकी ओर रोटियां । रोष से पीठ मोड़कर खड़ी हो गई । किन्तु गूंगा खड़ा रहा । रोटियां छुईं तक नहीं । देर तक दोनों चुप रहे । फिर न जाने क्यों गूंगे ने रोटियां उठा लीं और खाने लगा । चमेली ने गिलासों में दूध भर दिया ! देखा गूंगा खा चुका है । उठी और हाथ में चिमटा लेकर उसके पास खड़ी हो गई ।

‘कहां गया था ?’ चमेली ने कठोर स्वर से पूछा ।

कोई उत्तर नहीं मिला । अपराधी की भांति सिर झुक गया । सड़ से एक चिमटा उसकी पीठ पर जड़ दिया । किन्तु गूंगा रोया नहीं । वह अपने अपराध को जानता था । चमेली की आंखों से दो बूंदें जमीन पर टपक गईं । तब गूंगा भी रो दिया ।

और फिर यह भी होने लगा कि गूंगा जब चाहे भाग जाता, फिर लौट आता । उसे जगह-जगह नौकरी करके भाग जाने की आदत पड़

गई थी । और चमेली सोचती कि उसने उस दिन भीख ली थी या ममता की ठोकर को निस्संकोच स्वीकार कर लिया था ?

बसंता ने कसकर गूंगे के चपत जड़ दी । गूंगे का हाथ उठा और न जाने क्यों अपने आप रुक गया । उसकी आंखों में पानी भर आया और वह रोने लगा । उसका रुदन इतना कर्कश था कि चमेली को चूल्हा छोड़कर उठ आना पड़ा । गूंगा उसे देखकर इशारों से कुछ समझाने लगा । देर तक चमेली उससे पूछती रही । उसकी समझ में इतना ही आया कि खेलते-खेलते बसंता ने उसे मार दिया था ।

बसंता ने कहा—अम्मा ! यह मुझे मारना चाहता था ।

‘क्यों रे ?’ चमेली ने गूंगे की ओर देखकर कहा । वह इस समय भी नहीं भूली थी कि गूंगा कुछ सुन नहीं सकता । लेकिन गूंगा भाव-भंगिमा से समझ गया । उसने चमेली का हाथ पकड़ लिया । एक क्षण को चमेली को लगा जैसे उसीके पुत्र ने आज उसका हाथ पकड़ लिया था । एकाएक घृणा से उसने हाथ छुड़ा लिया । पुत्र के प्रति मंगल-कामना ने उसे ऐसा करने को मजबूर कर दिया ।

कहीं उसका भी बेटा गूंगा होता तो वह भी ऐसे ही दुख उठाता । वह कुछ भी नहीं सोच सकी । एक बार फिर गूंगे के प्रति हृदय में ममता भर आई । वह लौटकर चूल्हे पर जा बैठी, जिसमें अन्दर आग थी, लेकिन उसी आग से वह सब पक रहा था जिससे सबसे भयानक आग बुझती है—पेट की आग, जिसके कारण आदमी गुलाम हो जाता है । उसे अनुभव हुआ कि गूंगे में बसंता से कहीं अधिक शारीरिक बल था । कभी भी गूंगे की भांति शक्ति से बसंता ने उसका हाथ नहीं पकड़ा था । लेकिन फिर भी गूंगे ने अपना उठा हाथ बसंता पर नहीं चलाया ।

रोटी जल रही थी । झट से पलट दी । वह पक रही थी; इसीसे बसंता बसंता है... गूंगा गूंगा है...

चमेली को विस्मय हुआ । गूंगा शायद यह समझता है कि बसंता

मालिक का बेटा है, उसपर वह हाथ नहीं चला सकता। मन ही मन थोड़ा विश्वोभ भी हुआ, किन्तु पुत्र की ममता ने इस विषय पर चादर डाल दी। और फिर याद आया उसने उसका हाथ पकड़ा था। शायद इसीलिए कि उसे बसंता को दण्ड देना ही चाहिए, यह उसको अधिकार है...

किन्तु वह तब समझ नहीं सकी, और उसने सुना गूंगा कभी-कभी कराह उठता था। चमेली उठकर बाहर गई। कुछ सोचकर रसोई में लौट आई और रात की बासी रोटी लेकर निकली।

‘गूंगे!’ उसने पुकारा।

कान के न जाने किस पर्दे में कोई चेतना है कि गूंगा उसकी आवाज़ को कभी अनसुना नहीं कर सकता; वह आया। उसकी आंखों में पानी भरा था। जैसे उनमें एक शिकायत थी, पक्षपात के प्रति तिरस्कार था। चमेली को लगा कि लड़का बहुत तेज है। बरबस ही उसके होंठों पर मुस्कान छा गई। कहा—ले खा ले।—और हाथ बढ़ा दिया।

गूंगा इस स्वर की, इस सबकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वह हंस पड़ा। अगर उसका रोना एक अजीब दर्दनाक आवाज़ था तो यह हंसना और कुछ नहीं—एक भयानक गुराहट—सी चमेली के कानों में बज उठी। उस अमानवीय स्वर को सुनकर वह भीतर ही भीतर कांप उठी। यह उसने क्या किया था? उसने एक पशु पाला था जिसके हृदय में मनुष्यों की-सी वेदना थी।

घृणा से विक्षुब्ध होकर चमेली ने कहा—क्यों रे तूने चोरी की है?

गूंगा चुप हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया। चमेली एक बार क्रोध से कांप उठी, देर तक उसकी ओर घूरती रही। सोचा—मारने से यह ठीक नहीं हो सकता। अपराध को स्वीकार कराके दण्ड न देना ही शायद कुछ असर करे। और फिर कौन मेरा अपना है। रहना हो तो ठीक से रहे, नहीं तो फिर जाकर सड़क पर कुत्तों की तरह जूठन पर

जिंदगी बिताए, दर-दर अपमानित और लांछित....।

आगे बढ़कर गूंगे का हाथ पकड़ लिया और द्वार की ओर इशारा करके दिखाया—निकल जा ।

गूंगा जैसे समझा नहीं । बड़ी-बड़ी आंखों को फाड़े देखता रहा । कुछ कहने को शायद एक बार होंठ भी खुले किन्तु कोई स्वर नहीं निकला । चमेली वैसे ही कठोर बनी रही । अबके मुंह से भी साथ-साथ—जाओ निकल जाओ । ढंग से काम नहीं करना है तो तुम्हारा यहां कोई काम नहीं । नौकर की तरह रहना है रहो, नहीं, बाहर जाओ । यहां तुम्हारे नखरे कोई नहीं उठा सकता । किसीको भी इतनी फुर्सत नहीं है । समझे ?

और फिर चमेली आवेश में आकर चिल्ला उठी—मक्कार, बद-माश ! पहले कहता था भीख नहीं मांगता, और सबसे भीख मांगता है । रोज-रोज भाग जाता है, पत्ते चाटने की आदत पड़ गई है । कुत्ते की दुम क्या कभी सीधी होगी ? नहीं । नहीं रखना है हमें, जा, तू इसी वक्त निकल जा....।

किन्तु वह क्षोभ, वह क्रोध, सब उसके सामने निष्फल हो गए, जैसे मन्दिर की मूर्ति कोई उत्तर नहीं देती, वैसे ही उसने भी कुछ नहीं कहा । केवल इतना समझ सका कि मालकिन नाराज है और निकल जाने को कह रही है । इसीपर उसे अचरज और अविश्वास हो रहा है ।

चमेली अपने आप लज्जित हो गई । कैसी मूर्खा है वह ! बहरे से जाने क्या-क्या कह रही थी ? वह क्या कुछ सुनता है ?

हाथ पकड़कर जोर से एक झटका दिया और उसे दरवाजे के बाहर धकेलकर निकाल दिया । गूंगा धीरे-धीरे चला गया । चमेली देखती रही ।

करीब घंटे भर बाद शकुन्तला और बसन्ता दोनों चिल्ला उठे—
अम्मा ! अम्मा !!

‘क्या है ?’ चमेली ने ऊपर ही से पूछा ।

‘गूंगा’... बसंता ने कहा । किन्तु कहने के पहले ही नीचे उतरकर देखा—गूंगा खून से भीग रहा था । उसका सिर फट गया था । वह सड़क के लड़कों से पिटकर आया था, क्योंकि गूंगा होने के नाते वह उनसे दबना नहीं चाहता था... दरवाजे की दहलीज पर सिर रख वह कुत्ते की तरह चिल्ला रहा था... ।

और चमेली चुपचाप देखती रही, देखती रही कि इस मूक अवसाद में युगों का हाहाकार भरकर गूँज रहा है ।

और ये गूंगे... अनेक-अनेक हो संसार में भिन्न-भिन्न रूपों में छा गए हैं जो कहना चाहते हैं पर कह नहीं पाते । जिनके हृदय की प्रतिहिंसा न्याय और अन्याय को परख कर भी अत्याचार को चुनौती नहीं दे सकती, क्योंकि बोलने के लिए स्वर होकर भा—स्वर में अर्थ नहीं है, क्योंकि वे असमर्थ हैं ।

और चमेली सोचती है, आज दिन ऐसा कौन है जो गूंगा नहीं है । किसका हृदय समाज, राष्ट्र, धर्म और व्यक्ति के प्रति विद्वेष से, घृणा से नहीं छटपटाता, किन्तु फिर भी कृत्रिम सुख की छलना अपने जालों में उसे नहीं फाँस देती—क्योंकि वह स्नेह चाहता है, समानता चाहता है ।

धर्म-संकट | ६

इस कहानी के सम्बन्ध में—

बाप और बेटे के बीच में एक स्त्री है। बाप के नाते पत्नी, बेटे के नाते मां। बाप भी दिन भर खटता है, बेटा भी। एक शराब का नशा करता है, एक भांग का। और दोनों में संघर्ष है। दोनों ही अपने थोड़े से सुख के लिए लड़ते हैं। मां और पत्नी—वह स्त्री क्या करे? एक ओर परम्परा की मर्यादा है कि पुत्र पिता की इज्जत करे, दूसरी ओर नारी का वह असली रूप है—बेटा ही असली है उसका प्यारा, क्योंकि उसने उसे पेट में रखा था। यह है इस कहानी का वह थोड़ा-सा कथानक जिसके चारों ओर एक शरीर है और बीचोंबीच है आत्मा !

आज याद नहीं आता कि किस क्षण में लोकजीवन ने मुझे इस सत्य की अनुभूति दे दी थी। मैंने कभी आज तक किसी पात्र की कल्पना नहीं की। ऐतिहासिक पात्रों को भी तब ही लिया है जब मुझे जीवन में उनका कोई प्रतिरूप किसी न किसी अंश में कहीं मिल गया है। संभवतः यही कारण है कि मैंने बहुत कम कहा-

नियां लिखी हैं। कहानी लिखने के पहले सदैव यही सोचता हूँ कि लिखने के लिए कभी न लिखूँ, लिखूँ किसी एक विशेष कारण को लेकर। इसी खोज में कभी यह कहानी मिली, और जब मैंने सुनाई तो सचमुच स्त्रियों को अजीब-सा महसूस हुआ और अन्त में उन्होंने कहा : यह बात ठीक है।

मेरी ऐसी ही चेष्टा रही है कि चमत्कार भाषा में नहीं, मन में आना चाहिए : वह यहां है, क्योंकि चमत्कार आश्चर्य में नहीं आता, उस नित्य के देखे सत्य के उद्घाटन में आता है, जिसपर दृष्टि जाती तो है परन्तु वह ठहरती नहीं। इस दृष्टिकोण से 'धर्म-संकट' का अपना महत्व है।

यह कहानी मानव के परिवार की उस मूलभूत समस्या को सामने रखती है, जो सार्वजनीन और सार्वकालिक है। नारी का यह रूप अपने दोनों छोरों पर विचार और प्रवृत्ति का एक निरंतर संघर्ष बनकर रहता आया है।

कहानी अनायास बनती है और जब वह जीवन से विमुक्त हो जाती है, तब अपना स्वावलंबन खोकर कृत्रिमता की ओर चली जाती है। जीवन के इन कोणों से जो रेखाएं खिंचती हैं, वे कितनी दूर तक जा सकती हैं, इसका अनुमान भी लगाना कठिन है।

जो पत्नी है वह मर्यादा के अंतर्गत आती है, किंतु जो मां है वह मर्यादा से भी बड़ी अनुभूति को धारण करती है। इस कहानी में मैंने यही दिखाने की चेष्टा की है। यदि मैं उसका चरित्र उदात्त बनाने के लिए यह दिखाता कि वह पुत्र को ठुकरा देती है, तब मैं कृत्रिमता को प्रश्रय देता, क्योंकि कला का सत्य वस्तु के सत्य पर अधिक आश्रित होता है, कलाकार का सत्य उसपर ज्यों ही हावी हुआ कि उसके प्राण अपने आप सिकुड़ जाते हैं।

घम-संकट एक त्रिकोण है और अपने किसी भी रूप में वह जब इकाइयों में आता है तब ऐसा ही त्रिकोण बनाता है। इसीलिए यह कहानी एक पैटर्न प्रस्तुत करती है, जिसे शायद अभी तक तीन पाठकों ने पहचाना है, और मुझे यह प्रमाण दिया है कि हिंदी में बहुत गहराई है, परंतु अभी उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

धर्म-संकट

एक छोटी सी जगह के पीछे दिन-रात भगड़ा बना रहता । सामने एक बड़ा शीशा लगा था जिसमें शकल जब हिलती हुई दिखाई देती तो देखने वाले को अपनी सूरत के बारे में जितने विचार होते वे सब मुगालते में बदलते हुए नजर आते ।

उसे वे लोग दूकान कहते, इसलिए एक बड़ा लाल पत्थर बिछा रहता जिसपर पान—लगे हुए बीड़े—रखे रहते और लकड़ी के खानों में खाली सिगरेट के पाकेट ऐसे जमे रहते जैसे वे सब भरे हुए थे । इनके अतिरिक्त कुछ बीड़ियों के बंडल झलका करते ।

एक जमाना था जब बड़ी दूकान बाजार में ठाठ से खुलती थी । उसके रहते जब मुहल्ले में भगत का रतजगा हुआ, हरदेव सदा चांदी की पाड़ के निकट बैठा करता ।

पर अब सब कहाँ था ? वह एक सुपना था जो अचानक ही मिला था और अचानक ही खो गया । शराब के नशे ने जब अपने जहरीले पंजों का फैलाव समेट लिया और दिमाग को खाने लगा, तब आंख खुली । देखा सब लुट चुका था ।

बाप की दुनिया संकुचित थी । वह अब करीब पचास साल का था । दो-एक शायद ऊपर ही होगा । उसका मुख गंभीर था जिसे देखकर भिखारी सहज ही उससे भीख मांगने की हिम्मत नहीं कर सकता था । वह

अधिकांश चुप रहता । उसके गालों पर एक खुरदुरापन था और सिर के छोटे-छोटे बाल उसकी गंभीरता को अधिक बढ़ाते । कभी-कभी जब वह हंसता तो उसमें भी एक बड़प्पन होता । धोती और कुर्ता पहनकर जब वह खड़ा होता उसके कंधे तनिक आगे को झुके हुए दिखाई देते । जब दूकान पर कोई चीज नहीं होती और ग्राहक उसकी मांग करता वह ग्राहक की ओर देखे बिना ऐसे मना करता कि ग्राहक फिर दूसरी बार उसके यहां कभी नहीं आता ।

और लड़का दूसरी तबियत का आदमी था — हंसमुख, मस्त सा दिखने वाला । शकल में बेटा बाप से मिलता-जुलता था । जैसे पहले मोम में बाप का सांचा लेकर फिर उसमें बेटे का ढाल दिया गया हो । उसके दांत ज़रूर कुछ बड़े थे । सुती हुई देह थी । और जब वह शाम को थका-मांदा भांग पीकर बैठता और जोर-जोर से आवाजें लगाता हुआ हंसता, तब उसकी अधखुली नशीली आंखों में ज़िन्दगी की रोशनी चमकती हुई दिखाई देती, उस समय वह बहुत प्यारा दिखाई देता । उसके कपड़े अजीब होते । नंगे बदन से लेकर कुर्ता, फितूरी, मिर्जई, वास्कट, कोट, सब ही उसके ऊपर फबते दिखाई देते और ऐसे बदलते-बदलते रहते जैसे ज़मीन पर अलग-अलग ऋतु में अलग-अलग फल निकलते हैं ।

लेकिन बेबात की बात में दोनों में झड़प हो जाती और वे दोनों नाखुश होकर एक दूसरे को गालियां देते ।

इन दोनों के बीच का प्राणी एक स्त्री थी । वह एक की पत्नी थी, दूसरे की मां । अर्थात् हरदेव की स्त्री और भगवानदास की माता । वह दोनों के झगड़े में मध्यस्थ बनती । पिता और पुत्र में वही भेद था जो शराब और भांग में होता है । शराब में दिमाग घूमता है, उसका नशा शोर करवाता है, दंगा मचवाता है, किन्तु भंग में तरंग होती है, दिमाग ऊपर उठता है और आदमी बोदा हो जाता है ।

अक्सर वह इन दोनों के झगड़ों से तंग आकर कहती—अब नहीं रहूंगी मैं यहां ! मैं तो अपनी बेटी को लेकर अपने भैया के घर चली

जाऊंगी। एक दिन की हो तो कोई बात है। यह तो रोज-रोज की बजती ढोल है। कोई कहां तक संभाले। जब हिये में समुवाई नहीं रही तब क्या फायदा।

किन्तु कोई परिणाम नहीं निकलता। हरदेव बड़बड़ाता रहा, वह कभी उसे रोकती, कभी उसके अदब में चुप रहती और भगवानदास बगावत करता रहा, उसकी आवाज उठती रही। न उसने अपनी बहू की सुनी, न बहिन की, न मां ही बेटी को लेकर भैया के घर चली।

शाम होते ही दूकान पर दोनों में तनातनी शुरू हो जाती। दोनों अपने को ज्यादा परिश्रमी साबित करते। एक दूसरे पर अपनी थकान का प्रदर्शन करते। शिकवा होता कि एक दूसरे की यही कोशिश है कि बस दूसरा कोल्हू में बैल की तरह छुता करे, टूटा करे।

रात होते-होते दोनों आपस में जोर-जोर से बातें करने लगते। हरदेव शीघ्र ही गर्म हो उठता। उसे पड़ोस के मुंशीजी जिस दिन देसी अद्धा पिला देते, उस दिन वह शहंशाह हो जाता। बेटा भांग से आगे न बढ़ता। दोनों एक दूसरे को नशेबाज समझते।

और जब भगवानदास क्रुद्ध हो उठा, उसने चिल्लाकर एक दिन सुना-सुनाकर कहा—शराब पिलाने को मेरे पास पैसे नहीं हैं; न ही कोई कमा-कमा के रख गया है मेरे पास।

मां ने सुना और पूछा—वह तेरा कौन है !

भगवानदास चुप रहा। वह जानता है पर आज उसकी आत्मा स्वीकार नहीं करना चाहती। मां उसकी द्विविधा को समझ गई। उसने स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा—क्यों ऐसे कुबोल कहता है बेटा ! घर की शान्ति आपस में मिलकर रहने में मिलती है। यों नहीं होता कुछ। आखिर है तो तेरा बाप ही न !

मां का तर्क कुछ ठोस था। आवेश पर धैर्य ने विजय पा ली थी। और तब भगवानदास ने पराजित स्वर में कहा—होगा कोई। जब अपने की चिंता ही नहीं की तो कौन किसका है, अम्मा !

‘ऐसे नहीं कहते बेटा । जो भाग है मिल-बांटकर खालो । भगड़ने से सब नीचे ही फैलता है...’

‘पड़ोसी की कौन रखवाली करता है अम्मा,’ भगवानदास अचानक ही कह उठा । उसके स्वर में कोई आत्मीयता नहीं थी । मानो भगवानदास बहुत आगे बढ़ आया था ।

मां को दुःख हुआ । वह यह न सुनना चाहती थी । जैसे आज उसका हृदय दो टुक हो जाएगा । यह वह क्या सुन रही है ! घर की पुरानी दीवार आज उसके देखते-देखते चटक रही है । मन में संसा का बिस सबसे बुरा है ।

रात को वह अकेली पड़ी-पड़ी सोचती रही ।

एक ओर मरद है, दूसरी तरफ बेटा । वह किधर जाए ! कब तक यह तनातनी बनी रहेगी । एक दिन तो लेज को टूटना ही पड़ेगा । अब भगवानदास और उसका बाप दोनों उसकी आंखों के सामने आने लगे । एक बालक, जिसे वह दूध पिला रही है, वह बच्चा जिसपर उसका पूरा अधिकार था, जिसे उसने आदमी बनाया है । एक वह सदैव ही पुरुष था, सशक्त था, उसे लगा हरदेव के सामने भगवानदास एक बच्चा था, उसके सामने वह बहुत कमजोर था ।

उस समय दूकान में भगवानदास जागकर उठ बैठा । उसने एक अंगड़ाई ली और दो बार अपनी भुंभलाहट मिटाने को बमभोले का नारा लगाया जो नीम के पत्तों में जाकर लटका, फिर उड़ गया ।

गांव वाले हुशियार हो गए हैं । शहर के लोगों को देखकर हंसते हैं । पांच के माल की कीमत पच्चीस रुपए बताते हैं । सीधा देखा तो साफ बना दिया । ककड़ी लेने तभी भगवानदास अलस्सुबह, बल्कि दो बजे रात को रात ही कहना चाहिए, सिर पर खाली डलिया रखकर चल देता है । जब लौटता है तब आसमान में सफेदी फैलने लगती है । उसके शोर से दूकान में एक जगार सी आ गई ।

हरदेव ने देखा । उस वक्त उसका सिर भारी था । अभी नशा उतरा

नहीं था। खुमारी का कसैलापन उसके मन को अब एक बुरा-बुरा सा खट्टापन दे रहा था। भगवानदास चला गया। क्या सो पाया ! कुछ नहीं। अब दिन भर फल-ककड़ी बेचेगा, लू में, धूल में ; पर हरदेव को इसकी एक भी बात याद नहीं आई। वह सोच रहा था, दिन भर बाद जरा पलक लगी थी। उजड़ ने हाहा-हूह करके जगा दिया। आया बड़ा भगत का...

जब हरदेव उठा तो उसके पांव टूट रहे थे। धूप चढ़ने लगी थी। उसने दूकान खोल दी और अपने नित्यकर्म में लग गया। भगवानदास दस बजे के करीब डलिया लेकर घर आया, इसी मुहल्ले में ककड़ी बेच रहा था, सो डलिया धरकर रोटी खाने बैठ गया। मां खिलाती रही।

हरदेव धूप की कड़ी गर्मी से अब कुछ खुश्की महसूस करने लगा था। दिन में जब उसने देखा कि अभी तक भगवानदास की अम्मा ने रोटी नहीं भेजी और वह वहां उपेक्षित भुलाया हुआ सा बैठा है, तब उसे एक कमी अनुभव हुई और आत्महीनता की तीव्रता पर वह झल्ला उठा। उसने सोचा—क्यों मैं इनके हाथ पर निर्भर रहूं ! क्यों न अलग यहीं दो रोटी थाप लूं !

किन्तु यह विचार अधिक देर तक नहीं चला। उसकी पत्नी ने लाकर कटोरदान सामने रख दिया।

‘ले जाओ’, हरदेव ने गंभीरता से कहा—मैं नहीं खाऊंगा, पहले उसे चरा दो। लाड़ला है न ? मुझसे क्या ? मैं भूखा मर जाऊंगा, ले जाओ।—उसकी आवाज में एक हठ था। स्त्री मुस्कराई। उसने परिस्थिति को समझा। कहने लगी—तुम्हारा ही बेटा है ढोला। एक दिन तो भवक दुपहरिया में उसे आने का संयोग हुआ, उसी दिन तुम बैठे गुस्सा हो रहे हो। बाल-बच्चों का पहला हक कि हमारा-तुम्हारा ? भली कही। नहीं खाऊंगा। ले जाओ। खेल है सो ? वह कोई खेलता है कि आवारा-गर्दी में घूमता है ? न सोता है, न बैठता है, दिन भर तुम्हारी ही खातिर में लगा रहता है, आखिर उसकी तो बहन है...

हरदेव सुनता रहा, सुनता रहा । अब वह टूटा—लेजा सब, मुझे तू याद मत दिलाया कर***।

परन्तु स्त्री उसे जानती थी । कटोरदान खोल दिया । पकी-पकाई दिखाई देने लगी । स्त्री का यह पेट पर चलने वाला हथियार उसके आंसू इत्यादि हथियारों से कहीं ज्यादा आसानी से कारगर होता है ।

हरदेव पिघला । रोटी का कौर तोड़कर कहा—मैं नहीं कहता कुछ । पर तू तो उसे ही सह देती है । मेरी बात सुनता है वह ? इस कान से सुनी उससे उड़ा दी, जैसे बात नहीं हुई मन्खी हो गई । अंधेर है यह । यह तुम दोनों का अंधेर है । अब समझ रहा हूं मैं, हां ।

वह परेशान-सी देखती रही । यह समस्या अत्यन्त जटिल थी ।

‘कोन ? मैं ? उसकी तरफ बोलती हूं ?’ उसने एक वाक्य को तीन प्रश्नों में तोड़कर कहा, जैसे समष्टि से व्यष्टि में होता हुआ अहंभाव अंत में अपनी नकारात्मकता में स्वयंसिद्ध हो गया । वह कहने लगी—तुम इस घर से अलग हो ? मैं पूछती हूं, तुम अपने को घर का मालिक क्यों नहीं समझते ? बेटी का ब्याह तुम्हें नहीं करना है ? वह सिर्फ मां बेटे की जिम्मेदारी है ? बेटी तुम्हारी नहीं है ? कह दो । मैं पूछती हूं, आज कह दो ।

हरदेव भुनभुनाया—अब तो बेटा भी जिम्मेदार हो गया, ठीक है । जो जिम्मेदार है वही मालिक है । फिर मेरी क्या ज़रूरत ? इस लौंडे का ब्याह कराके ही मुझे क्या सुख मिल गया है ?

स्त्री मुस्कराई । उसने कहा—क्या कहते हो ? बेटा-बेटी का ब्याह करके नेग चुकाई जाती है कि सुख की आशा की जाती है ?

किंतु बात यहीं समाप्त नहीं हुई । वह जब चली गई हरदेव दूकान पर बैठा-बैठा ऊबने लगा । मुंशीजी का लड़का दो बार बुलाकर चला गया । शाम को भगवानदास लौटा । हरदेव भुना बैठा था ।

दिन में सख्त गर्मी थी । लूग्रों की चपेट से देह भुलस-भुलस जाती थी । वह आड़ में लेटा रहा । आकाश से आग बरसती रही । इस समय

वह वहां से उठना चाहता था ।

भगवानदास समझ गया । उसे खीझ हुई । दिन भर यहां लूट्रों में चक्कर लगाते-लगाते शरीर फुंक रहा है और राजा साहब हैं कि आड़ में भी दूकान पर नहीं बैठ सकते । इन्हें तो नींद चाहिए, नींद ।

कुछ न कहकर चुपचाप वह मन्दिर के नल पर नहाने चला गया । शरीर पर नल का पानी कुछ-कुछ सीटा-सीटा-सा लगा, और एक हल्की फुरफुरी आई । वह शिथिल-सा पानी की धार के नीचे बैठा रहा । मजा आ रहा था, जैसे इस ठंडक से धूल के साथ सारी हारारत, सारी थकान बह-बहकर निकल रही हो । उसे काफी देर हो गई ।

जब वह नहाकर लौटा तो सीधा रोटी खाने घर चला गया, क्योंकि भूख तेज हो गई थी ।

हरदेव ने देखा । वह क्रोध से कांप उठा । नवाब का बच्चा, क्या कहने हैं, अब मुंशीजी क्या रात भर बैठे रहेंगे ? एक तो बिचारे बुलाकर पिलाते हैं तिसपर कब तक इन्तजारी करेंगे ? आया था, खैर नहा ले भाई । अभी लड़का है, तेरा बख्त है, पर यह क्या कि अब चल दिए बदन फटकार कर । हरदेव सोचता रहा । विचार एक रूप होकर घिरने लगे । बस इसे क्या ? भांग पी ली और सो रहा । एक बार न सोचा होगा इसने कि बुड्ढा क्या कर रहा है, क्या करना चाहता है । उसे दुकान से क्या मतलब ? वह तो एक काम करेगा । बस, जैसे इसके बाप ने मुझे नौकर रख लिया है कि बैठ, सौदा बेच, जो गुल्लक में आए सो इधर दे इधर...

हरदेव को गुस्सा घेरने लगा जैसे शिकारी जानवर को घेरता है, जैसे चारों तरफ बाजे बजाती हुई भीड़ बढ़ी आ रही है और वह लाचार बाहर निकलता चला आ रहा है । उसे लगा उसके विरुद्ध सारा घर मिलकर एक हो गया है । वह क्यों उन्हें अपना समझता है । वे सब उसे उल्लू बनाकर रखना चाहते हैं जैसे वह उन सबका गुलाम है ।

इस विचार की जुगुप्सा ने जैसे उसका एकदम दम घोट दिया । उसे लगा वह मंभधार में डूब रहा है ।

अब वह फुफकारने लगा जैसे मुहल्ले के सब कुत्तों ने मिलकर एक कुत्ते को घेर लिया और उसकी निर्बल आत्मा पिछली टांगों में दम दबाए, दांत निकालकर चिल्ला रही है, वह प्राणपण से अपने को मुक्त करने की चेष्टा कर रहा है। बुड्ढा ! वह बुड्ढा हो चला है। वे चाहते हैं कि वह अपाहिज-सा उनका हुक्म बजाता रहे। अब जैसे उसकी कोई मर्जी नहीं रही। कल तक वह जहां मालिक था, आज वह वहां गुलाम बनकर रहेगा ?

उसने दूकान बड़ा दी। असह्य दुख से उसकी आत्मा छटपटाने लगी। क्यों करे वह किसीकी परवाह ? ऐसे रहने में उसे क्या सुख मिलता है ?

घर पहुंचते ही वह चिल्लाने लगा—कहां है तेरा सपूत कुलच्छनी ? मैं कोई आदमी थोड़े ही हूं ? जब देखो, जुता रहूं। क्यों खाता हूं, क्यों पीता हूं ? फूटी आंखों अब मैं नहीं सुहाता इस घर में। इस तरह रहने से तो मर जाना अच्छा है। चौबीसों घंटे मैं तो दूकान में मक्खियां मारूं।

स्त्री ने देखा। और शांत रही। हरदेव कहता रहा—और नवाब के बच्चे हैं कि सड़कों पर टहल रहे हैं...।

हरदेव गरज रहा था। उसका क्रोध भगवानदास के चुप रहने से बढ़ता जा रहा था। उसे लगा वह जन्म-जिन्दगी से ऐसे ही उपेक्षित रहा है, मूर्ख समझा जाता रहा है। इस घर से उसे वह सम्मान नहीं मिल रहा जो उसके योग्य था।

भगवानदास ने कौर भरे मुंह से कहा—सुहाए वह जो सुहाने लायक काम करे। अपना है तो क्या, सांप भी पास सुलाने को है ? नहीं हम बैठे रहते हैं जो पांव मखमली हों। ठेक पड़ गई हैं चलते-चलते; दहूँ ठेक पड़ गई हैं।

बाहर में शायद लोग सुन रहे होंगे। क्या सोचते होंगे कि आज बाप-बेटे में तू-तू मैं-मैं हो रही है। यह विचार अधिक देर तक नहीं रहा।

किसके घर के चूल्हे के पीछे राख का ढेर नहीं है, घर-घर वही मट्टी के चूल्हे हैं ।

मां ने बेटे को डांटा—क्यों रे ! बाप के मुंह लगता है ? जानता है उसकी इज्जत से तेरी जीभ घिस जाएगी ?

‘आहा’, हरदेव ने सिर हिलाकर व्यंग से कहा—एक यही सपूत तो मेरी इज्जत करने को रह गया है । मेरी पांव की जूती मेरे सिर की इज्जत करेगी ? मुझे नहीं चाहिए ऐसी इज्जत ।

भगवानदास ने खाना छोड़ दिया । वह उठ बैठा और द्वार की ओर चलते हुए कहने लगा—अब नहीं रहना है मुझे इस घर में । समझी अम्मा ? तू रह, वह रहे, मैं नहीं एक मिनट रह सकता । कोई बात है । दिन बलेश, रात बलेश, चौबीसों घंटे की भिकभिक । इससे तो संख्या खाकर सो जाना भला है ।

मां ने दौड़कर पकड़ लिया ।

‘क्या कर रहा है बेटा’, फिर पति से मुड़कर कहा—आग लगे तुम्हारे फूटे बोलों को । थाली पर से मेरा बेटा उठा दिया ।

‘अरे तू जाने दे इसे । ब्याह के मैं लाया था तुझे । तूने ही इसे इतना मुंहचढ़ा बना दिया है । वह दिन भूल गया जब पिल्लों की तरह नाली में खेलता था, हम भी बच्चे थे, हमारा भी कोई बाप था, पर हमने कभी सामने खड़े होकर जवाब नहीं दिया । और तू है कि आ बेटा, ले बेटा । निकाल इसे ! बेईमान ! बदजात ! मैं पहले ही कहता था यह किसी भंगी की श्रीलाद है, हरामजादा, छोड़ दे इसे...’

‘और वह दिन तुम भूल गए’, भगवानदास ने चिल्लाकर कहा—जब कुत्तों की तरह नाली में पड़े थे शराब पीकर, जब मैंने उठाया था तुम्हें, जब दुनिया का गन्दा चाट रहे थे ।

उसकी चोट से हरदेव तड़प गया । उसने बढ़कर कहा—अब तो कह । हां, अबके कह तो देखूं । सूअर ! हलक में हाथ डाल के जीभ खींच लूंगा... !

वह चिल्ला उठी—भगवानदास ! कपूत ! बाप से सामना करता है ? उसकी तुझसे एक बात नहीं सुनी जाती ?

भगवानदास ने मां को पीछे धकेलकर कहा—आज यह नहीं मानेगा । कहूंगा, कहूंगा, फिर कहूंगा ! क्या कर लेगा, हां, ले मैं कहता हूं, सारी बाखर सुने । आया बड़ा डराने वाला, जैसे मैं कोई बच्चा होऊं, शराबी...

हरदेव का हाथ उठ गया । मां बीच में जूझ पड़ी किंतु दोनों क्रोध से मतवाले हो रहे थे । एक हाथ घूमा । वह छिटककर दूर जा पड़ी । दोनों लड़ रहे थे ।

आखिर बेटा जवान था । हरदेव के दो-चार हाथ कसके पड़ गए । हरदेव क्रोध से कांपने लगा । उसका मुख भयानक हो उठा । दांतों की नोक दिखाई देने लगीं । हरदेव ने फूत्कार किया—आज तेरी मां न होती तो हरामजादे, छाती फाड़कर खून पी लेता, पर इसकी वजह से तुझपर मेरा हाथ नहीं उठता ।

मां भगवानदास को कोसती हुई चिल्लाने लगी—अरे तेरा नास जाए कपूत । बाप पर हाथ उठाते तुझे लाज न आई । वह क्या इसी दिन के लिए बूढ़ा हुआ है ? कमबख्त । तुझमें हया का लेस भी नहीं रहा । इसका तो मैंने पैदा होते ही गला घोट दिया होता भगवान !—स्त्री की ललकार सुनकर उसी समय हरदेव ने सारी ताकत लगाकर भगवानदास को कसके धक्का दिया । गुत्थमगुत्थी फिर शुरू हो गई । मां चुपचाप खड़ी देख रही थी । उसे लग रहा था जैसे सारी दुनिया अब घूमने लगी है । लड़के के प्रति उसे अत्यन्त विक्षोभ था, घृणा थी । वह देख रही है उसका जाया आज घर में आग लगा रहा है । वह चिल्लाना भी भूल गई । हठात् हरदेव ने भगवानदास को फेंक दिया । वह कातर स्वर से चिल्ला उठी । दौड़कर अपने बेटे को संभाल लिया । उसने देखा, दीवार से टकरा जाने से भगवानदास के सिर से खून निकल रहा था । पास बैठ गई । सिर गोद में ले लिया । बेटे पर बेहोशी-सी छाई थी ।

हरदेव हाँफ रहा था, जैसे उसने एक बहुत बड़ा काम कर दिया है। अब भी वह इतना दम रखता है कि अपनी इज्जत अपने आप बचा ले।

भगवानदास ने अधखुली आंखों से मां को देखा। मां उसके सिर से बहते खून को देख रही थी। उसने क्रोध से जलती हुई आंखों से देखकर कहा—तुम चले जाओ। अभी घर से निकल जाओ। तुम मेरी गोद में आग लगाना चाहते थे? जिसे मैंने इतने दिन तक अपनी कोख में रखा, उसे तुम मार डालना चाहते थे?

हरदेव हतबुद्धि खड़ा रहा। स्त्री कहती रही—जिनावर ! जंगली ! हाथ न टूट गया तुम्हारा जो इस फूल को मसलने चले थे।—और उसने पुचकारकर कहा—उठो बेटा, अब हम इस घर में नहीं रहेंगे। वह दुकान इसीकी रहे, देखें कैसे चला लेता है। हम-तुम मेहनत करके पेट पाल लेंगे...

फूल का जीवन | ७

इस कहानी के सम्बन्ध में—

हमारा समाज वर्गों के असामंजस्य में पल रहा है। धनी और दरिद्र का भेद मानव को संस्कृति के दो पलड़ों पर रखता है। मनुष्य दोनों जगह एक ही है, किंतु अपने बाह्य वातावरण के कारण वह एक-सा नहीं लगता। फूल का जीवन यह द्वंद्व स्पष्ट करता है।

जीवन प्रतिदिन बदल रहा है, उसकी मान्यताएं बदल रही हैं। और स्वप्न, जो सदा से मनुष्य देखता रहा है, अपना रूप परिवर्तित करते जा रहे हैं।

इसे लिखने के लिए मैंने तुलनात्मक अनुभूति की नई शैली का आश्रय लिया और मेरे कुछ पाठकों ने कहा कि यह एक नितांत नूतन प्रयोग था। साधारण पाठक सदैव ही एक पेशेवर आलोचक से अधिक ईमानदार होता है, यद्यपि पेशेवर यही बंध करता है कि वह अधिक विद्वान होता है अतः गुण-दोष जांचने की अच्छी परख उसीमें होती है। परंतु जिसे साधारण पाठक ग्रहण कर लेता है, आलोचक अपने पेशे की जिंदा रखने के लिए फिर उसी

लेखक का जय-जयकार ही नहीं करता, वरन् उसके नए-नए गुण भी खोज निकालता है। अतः मैं लिखता रहा हूं अपने साधारण पाठक के लिए, जिसके ग्रह को निर्लिप्त कहा जा सकता है। उस जैसे लोगों का कहना है कि फूल का जीवन व्यंग्य नहीं है, व्यंग्य से सहानुभूति है। हो सकता है इसमें मतभेद की गुंजायश हो, लेकिन जहां तक वातावरण का प्रश्न है, उसमें यह बात पूरी तरह से उतर आती है।

एक ओर समाज में भयानक मजबूरी है, दूसरी ओर एकांगी संस्कृति की घुटन है, स्वार्थपरता है, किंतु मैंने इसमें उस विद्रोह का आता हुआ गर्जन सुनाया है, जो आकर इन समस्त सुंदर बनने वाली कुरूपताओं को भकभोर कर रख देगा।

नैतिकता के मानदंडों का खोखलापन, मैंने दिखाया नहीं, वह अपने आप एक पक्ष बनकर सामने आ गया है। तभी मेरी कला ने अपने आप कहा है—

ठोकर लगने पर भी जो आदमी उत्तर नहीं देता वह कभी जिंदा नहीं होता, मर चुका होता है।

और उस क्षण जीवन का कठोर सत्य, विषमता और अत्याचार आकर जैसे इंजीनियर को पकड़ लेते हैं और वह एक दूसरे पहलू से सोचता है।

कहानी करुणा नहीं जगाती, जगाती है करुणा के माध्यम से विवेक। वह बीभत्सता जो सुंदरता के साथ-साथ चलती है, उसका उद्देश्य अंत में जाकर पूरा हो जाता है।

मनुष्य अपने स्वार्थ में भी अपना बाह्यरूप प्रायः सुंदर बनाए रखने की चेष्टा करता है। और उसके इस ढोंग को मैंने विशेष करके इस कहानी में खोला है, किंतु मैंने प्रचार का हाथ नहीं पकड़ा क्योंकि उससे इसमें हल्कापन आ जाता। सेठ और नीना के चरित्र परिपाश्वर्य में आते हैं, ताकि पाठक की दृष्टि इन

बगली पदों से रुककर सामने के ही पदों पर पड़ती रहे ।

फूल एक ऐसा प्रतीक है जो पहले किसी और के लिए प्रयुक्त होता है, किंतु अंत में आता है वह उस दलित के लिए, जिसकी मृत्यु एक नए जीवन को लाने के लिए आवाहन देती है । इस दृष्टि से यह कहानी और भी अधिक महत्त्व रखती है क्योंकि यह एक प्रतीक को दो रूपों में सफलता से प्रस्तुत कर देती है ।

फूल का जीवन

मेरे बगीचे के सब फूल सुबह खिलते हैं, शाम को मुरझा जाने के पहले तोड़कर काम में लाए जाते हैं । काम क्या, कभी नीना ने अपने जूड़े में खोंस लिए, कभी जीवन ने खेलते-खेलते गुलदस्ता बना लिया । बस इससे बढ़कर कुछ नहीं ।

आया बच्चों को घुटनों पर बिठाए शाम को उन्हें परियों की कहानी सुनाया करती है । मैंने भी कभी-कभी खेमे की आड़ में खड़े होकर उन्हें सुना है । सचमुच उनकी रंगीनियों को सुनकर मेरा हृदय भी हठात् ही सुख से भर गया था । किन्तु... दुर्भाग्य है कि वह सब सत्य नहीं होतीं । और बच्चों का प्यारा विस्मय देखकर न जाने मुझे क्यों इतनी वेदना कचोट उठी थी कि कल यह सब अपने आप भस्म से उड़ जाएगा ।

और रात की काली छायाओं में जब पड़ोस के बंगलों की बत्तियां जल उठती हैं, जब रेडियो की बजती हुई रागिनियां उस खामोशी पर लोटने लगती हैं, जब आसमान में दूर-दूर तक छिटके हुए तारों का वैभव खिलखिलाने लगता है तब मेरे हृदय के सूनेपन पर बरबस कोई छाये लगता है । मैं नहीं जानता कि मैं इन्जीनियर होते हुए भी इतना भावुक क्यों हूं ?

मैं सिगरेट पीता हुआ उस अंधेरे में बंगले के बाहर टहलने लगा । सड़क पर सन्नाटा होने लगा था । कभी-कभी एक मोटर जुन्न करती हुई

गुजर जाती थी ।

मैं एकाएक ठिठक गया । कला का कोई रूप नहीं जो मेरे मन को ग्रस नहीं लेता । दीवार पर ही यदि चूना भड़कर आकार बन जाए तो मुझे उसमें भी मनुष्य की आकृति दिखाई देती है ।

एक ओर एक लड़का बैठा था । मैंने उस निर्बुद्धि उपेक्षा को देखा जो विवशता बनकर उस जीवन के प्राणों में समा गई थी । भविष्य के आलोक की प्रतीक्षा में ही जिसका सब कुछ रात के अंधेरे की तरह गल रहा है । किन्तु वह शकल कुछ मुझे और ही मालूम दी । केवल एक भिखारी । इसके चारों ओर भी ममता का घृणित ताण्डव होगा जो अपनी सत्ता को बचा रखने के लिए यह भी चिन्ता नहीं करता कि वह हमारे समाज पर एक घब्बा है । क्यों नहीं ऐसी निर्बलता अपने आप ही आत्महत्या कर लेती जैसे राष्ट्र के सम्मान के लिए जापानी हाराकिरी कर लेते हैं...

और आसमान में घटाएं छाती रहीं । उस अंधकार में एक सनसना-हट है जैसे कोई डर रहा है और उसकी सांस जोर-जोर से चल रही है । धीरे-धीरे आसमान के तारों को घटाएं निगलती चली आ रही हैं । जैसे वैधव्य की बाढ़ सुहाग के कुंकुम का अभिमान एक हुंकार के साथ ग्रस लेती हैं । फिर वेदना का तार बजता है जिसे हम पवित्रता कहते हैं... मैं लौट आया ।

पीछे के टोले से रात भर इन्कलाव जिन्दावाद की पुकारें गूंजती आ रही थीं । हम लोगों की नींद में अक्सर खलल पड़ जाता था । चुनावों का ऊधम था । न जाने क्यों आदमी कुछ अधिकारों के लिए इतना पागल हो जाता है । कैसा फूल है जो कांटा बनकर अपने को किसी काम का नहीं रखना चाहता ।

मैं हंस दिया । मुझे लगा जैसे मैंने जीवन का एक बहुत बड़ा सत्य पा लिया था ।

पानी बरसने लगा था । एकाएक पड़ोस के घर में बड़ी जोर से शोर

हुआ। हम लोग चौंक उठे। मजदूरों की बस्ती है। बेवकूफ नहीं जानते कि किस वक्त क्या काम करना चाहिए।

मैंने मुंह के ऊपर रजाई ढंक ली लेकिन पानी की बूंदें तेजी से गिरने लगी थीं। एक ज़माना था जब यह ओछे लोग बड़े लोगों से इतना दबते थे कि हममें से कोई अकेला भी वहां चला जाए तो सब शोर अपने आप ही दब जाता। लेकिन अब ? कोई कुछ नहीं रहा। सब ही राजा हैं.....

विभोक्ष से मेरा मन भर गया। समझ नहीं सका कि यह संसार किधर जा रहा है। क्यों नहीं हम उन्हीं शाश्वत भावनाओं को अपना सब कुछ मान लेते ?

किन्तु मजदूरों की ललकारें अंधेरे के सीने पर बार-बार हथौड़ों की तरह चोट करती थीं जैसे आज वह उन नियमों को कभी नहीं मानेंगे।

बादल आसमान में निरंतर गरजते रहे। उन्हें कोई मतलब नहीं। और भोर में जब फूलों के होंठों पर ओस की बूंदों की तरह रात के यह आंसू झलमला उठेंगे तब...

शायद वह गलीज भिखारी लड़का इस वक्त भीग रहा होगा। उस भयानक रात में मुझे नींद नहीं आ रही थी।

उठकर नीना के कमरे में गया। लाइट जलाकर देखा। कितनी सुन्दर थी। उसके चेहरे से गुलाबी फूट रही थी। कोमल बाल फैल गए थे जैसे घटाओं के बीच में चांद झलक रहा था। कितना सुखद था वह सब। रेशमी रजाई पर चमकता हुआ प्रकाश। और एकाएक नींद में ही अनजानी-सी नीना हंस दी। कितनी मीठी होगी वह नींद जिसमें इतने मादक सुपने होंगे। जबसे घर में आई है तब से कितना भरा सा लगता है सब कुछ।

मन नहीं किया कि जगाकर उसे अपनी बेचैनी की हालत सुनाऊं। क्यों मैं किसीको दुख दूं, कष्ट पहुंचाऊं ? यह तो बिचारी किसीका कुछ बुरा नहीं करती। लगता है जैसे डालों की नई पत्तियों पर गुलाब का फूल सो रहा हो, रात के हलके भोंके से उठती सिहर उसके बालों

पर धीरे-धीरे हाथ फेरकर उसे दुलार देती हो ।

और वे दूसरों की शान्ति भंग करने वाले मजदूर.....मुझे डर हुआ कहीं नीना जाग न जाए, कहीं इसकी आंखों का यह मीठा सुपना टूट न जाए....।

दो

पड़ोस के गायक की प्रभाती की मधुर तान सुनकर आंख खुल गई ।

भोर का सुहावन आकाश में बजने लगा । कचनार की डाल पर बैठे तोतों की पांत मेरे हृदय के कोने-कोने को छू गई और गायक के करुण स्वर का सन्धान एक लय बनकर गूँज रहा था जैसे घरती का सारा कलुष आज स्वर्ण के आलोक में धुल जाएगा ।

फूलों के होंठों पर हंसी फूट रही थी । रात का तूफान भी थम चुका था । बादल फटकर क्षितिजों पर भुक गए थे । उनके किनारों पर सुनहरी किरनें चमक रही थीं जैसे आकाश में एक स्वर्णहार उषा के स्पर्श से झनझना उठा हो जिसकी ध्वनि भी आलोक के चेतन स्वरूप में मुखरित हो उठी हो ।

एक गुनगुनाहट । सिर उठाकर देखा । बेलों की आड़ में फ़र का हल्का ओवरकोट ओढ़े नीना खिड़की पर दिखाई दी ।

एक मादकता ही जिसकी सत्ता की पूर्णता हो वही तो ब्रह्मा की सर्वोत्कृष्ट रचना है ।

‘कहिए ।’ मैंने कहा—नींद तो अच्छी आई न ?

नीना हंस दी । कितनी तृप्ति है इस एक तरल उफान में जैसे बहाव में निर्मल जल कल-कल कर उठा हो ।

बच्चे बाहर निकलकर खड़े थे । उनके शरीर पर ऊनी कपड़े थे । आभा में यह कमाल की सिफत है । मजाल है जरा भी उसकी नज़र चूक जाए और बच्चों के शीशों से चमकते हुए शरीरों पर भाप की सी मलिनता भी शेष रह जाए ।

और उस सुन्दर समय में वह गलीज चेहरे वाला बच्चा मेरे सामने खड़ा फूलों की तरफ देख रहा था। उफ, कह नहीं सकता कितनी वेदना से मेरे मन ने अपने आप भीतर ही भीतर एक मरोड़, एक ऐंठन सी अनुभव की। लगा जैसे सब कुछ अपने आप गिर जाएगा। रोटियों के लिए भगड़ने वाले यह कुत्ते ! क्या जानेंगे कि हमारी संस्कृति का वरदान हमें आज भी मर जाने से बचाए हुए है।

कितनी तृष्णा है उसकी उन कीचड़ भरी आंखों में, जैसे सब कुछ खो जाएगा। एक क्षण चैन से नहीं बैठ सकते। ज्ञान की बात आते ही पेट फूटने लगते हैं... असुन्दर का वह भीषण प्रतीक ही हमारी शांति की जड़ों में आग लगाकर इन सुन्दर गीतों में आग लगा देना चाहता है।

‘तेरी मां कहां है ?’ घृणा से पूछा।

किन्तु कठोर स्वर से कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मूर्ख डांट खाने के आदी हैं। इनसे कोई प्रेम से बात करे तो अविश्वास से इधर-उधर देखने लगते हैं। जैसे हम तो उनका कुछ खा जाएंगे। कंगाल ! है ही क्या इनके पास जो इतना अभिमान करने की स्पर्द्धा है इनमें ? कल तक भूखों मरते थे, आज दो पैसे की मजदूरी तो भी मिल जाती है। यह तो नहीं कि अपनी किस्मत का रूखा-सूखा खाकर चुप रहें... इन्हें तो अधिकार चाहिए... दिया जाए तो संभाल सकेंगे ? रोज तो पीकर लड़ते हैं...

बच्चे ने जवाब दिया—रात को आई नहीं। जाने कहां रह गई—। आरक्त हो गया मेरा मुख। अगर हमारे यहां बच्चों की मां रात किसी और जगह काट दे तो क्या बच्चे उसे इतनी निर्लज्जता से कह सकेंगे ? घोंट न देगी संस्कृति उनका गला ?

दूर कहीं फिर पुकार उठी—इन्कलाब जिन्दाबाद !

कितनी कशमकश है इस जिन्दगी में। इतना भी धीरज नहीं कि भोर की इस मनोहर बेला में तो यह व्यर्थ की हाहाकार रोक दें ? जैसे कहीं विश्राम का कोई किनारा नहीं है।

आवाज की छोटों मेरे मन की तपिश पर आकर जल रही हैं जैसे मुरदा चरांध फैलाता हुआ जल रहा हो, भस्म हो जाने के लिए, क्योंकि रूप के कगारों को तोड़ने वाले यह पशु मेरे मन के व्यक्तित्व पर प्रहार कर रहे हैं ।

सामने खड़े बच्चे की वह भूखी आंखें । क्या फाड़-फाड़कर देख रहा है सब कुछ । भूखा ! नज़र लगा दे तो खाते के पेट में दर्द होने लगे । कमीना ! निस्संकोच !

मन विधुब्ध हो गया । कितना सुन्दर होता यदि मैं प्राचीन काल में पैदा होता, जब यह शूद्र केवल सेवा से सन्तुष्ट थे, आज वह सेवा का औचित्य चाहते हैं । आज वह अपने कर्तव्यों को तोड़कर हमारे समाज में उच्छृङ्खलता-अव्यवस्था फैलाना चाहते हैं ।

नीना खिड़की पर से हट गई थी । बच्चे नीचे लान पर उतर आए थे । सुधा फूल तोड़ रही थी । और मंगू मस्त होकर भाग रहा था । मुड़कर देखा । वह गलीज आंखों वाला गन्दा मजदूर बच्चा चला गया था ।

उसके पैरों से धरती गन्दी हो रही है । अब भी ऐसा लगता है जैसे नाली की कीचड़ में से कोई कुत्ता निकल आया हो और धुले-पुछे पवित्र आदमी के पास खड़े होकर जोर से शरीर को फड़फड़ा उठा हो कि कीचड़ के छोटों से स्वच्छ वस्त्र बिगड़ जाएं । कितनी जलन है इन लोगों में ? कितनी ईर्ष्या है; किसीको सुखी तो देख ही नहीं सकते ।

मुझे लगा जैसे उन फूलों में भी पराग की जगह उस बच्चे की आंखों में कीचड़ छा गई थी और वे फूल मिचमिचाती आंखों से मुझे घूर रहे थे । कितना भयानक था यह विचार ! कितना घृणित ! लगा जैसे मैं परंपरा के संस्कारों को खोए दे रहा हूं । भोर की पवित्र शांति पर यह आज कैसे अंगार दहक उठे हैं ?

दिन भर इसी उदासी में रहा ।

नीना मोटर में कहीं चली गई थी । खाने के वक्त मेज पर भी नहीं

आई। आया बच्चों को खिला-पिलाकर पड़ोस के डिप्टी साहब के बच्चों के पास गई थी। अकेला तो कभी बच्चों को छोड़ना ही नहीं चाहिए...

लेकिन वह बच्चा अकेला रात भर सड़क पर पड़ा रहा, क्योंकि उसकी मां...मां...उसे छोड़कर किसी दूसरे के साथ चली गई थी...

पाप है यह ? मन न जाने आज चिल्ला उठना चाहता है !!

सांझ के समय जय में बैठा-बैठा रवि ठाकुर के गीत की कड़ियां दुहरा रहा था—

मेरा जीवन तुम्हारा परिचय है—

मेरी मृत्यु तुम्हारी विजय...

देखा मजदूरों की एक टोली दहाड़ती हुई गुजर रही थी...पूँजी-पतियों का नाश हो, सरमाएदारों को जड़ से मिटा दो...

मुझे इन लोगों की गरीबी से पूरी सहानुभूति है, पर यह लोग हिंसा का रास्ता क्यों अख्तियार करते हैं ? क्या हमारी संस्कृति का अध्यात्मवाद इन तक नहीं पहुंचा है ? जब आत्मा की बात होती है तब इन्हें रोटी की याद आती है। इन मजदूरों के सिर पर एक पागलपन है। क्या पूँजी-पति इनका कोई लाभ नहीं करता ? क्या वह मनुष्य नहीं है ? मालिक मालिक है। यह लोग नौकरों की तरह तो रहते नहीं ! मूर्खों का हीसला तो देखो, बराबरी करने चले हैं।

फिर एकाएक मुझे संतोष हुआ। जब तक पुलिस है तब तक तो इन गुंडों को सरलता से दबाया जा सकता है। लेकिन पुलिस अंगरेजों की गुलामी करती है !! यह न सही, इनके बच्चों के बच्चे कहीं अच्छे हो जाएंगे ..

किन्तु बच्चा खड़ा था सड़क पर। तब तक यह इसी तरह जानवर की तरह घूमा करेगा और घुन की तरह पिसता रहेगा। रात भर भीगा है कम्बख्त, न जाने कौन-सी हड्डियां हैं कि सुबह उठकर एक छींक भी नहीं आती...

फूलों के गालों को अंधेरा अपनी छाया में डरा रहा था जैसे भूत की भयानक सूरत देखकर वह सहम गए थे ।

तीन

हवा के ठंडे झोंकों में एक सिहरन थी । आस्मान नीला-सा बिल्कुल प्रशान्त, चारों ओर वही निस्तब्धता; सुनहली-सी धूप की हल्की गर्मी में हम लोग कुर्सियों पर चारों तरफ बैठे चाय पी रहे थे ।

इसी समय बाहर सेठजी की गाड़ी रुकी । मैंने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया । नीना ने नमस्ते किया । सेठजी हाल ही में जेल से छूटकर आए थे । बीच-बीच में कई बार जमानत पर छूट-छूट आए थे और अपना काम-कारोबार चलाते रहते थे । मुझपर उनकी विशेष कृपा थी । वास्तव में वे यदि ऐसा नहीं करते तो शायद मैं संसार में उनसे बढ़कर कृतघ्न किसी और को नहीं समझता । लड़ाई के दौरान में मेरे कारण उन्हें जितना फायदा हुआ उसे मनुष्य का हृदय रख शीघ्र भुला देना सहज नहीं और यही कारण है कि इतनी मिलों और कम्पनियों का मालिक स्वयं ही अपने नौकर के द्वार पर आता है । वैसे सेठजी मिलनसार हैं । आते ही जीवन और मंगू को छेड़ा और हंसकर कहा—कहिए नीना देवी, आजकल आपकी चित्रकला चल रही है या नहीं ?

नीना ने सिर हिलाया । सेठजी ने फिर कहा—आपकी कला से आत्मा पवित्र होती है । राजनीति के झगड़ों से दूर, ठीक ही तो है, कला और राजनीति का क्या संबंध ? कला तो शाश्वत वस्तु है ।

नीना की गूंजती आवाज चक्कर लगाती हुई चारों ओर फैल गई—
रामचरन !

भीतर से आवाज आई—हुजूर—और जब तक स्वर छूटकर इनके कान तक पहुंचा पीछे ही रामचरन भी था ।

‘जाओ !’ नीना ने कहा—जरा चीनी तो ले आओ ।

रामचरन ने देखा और चुपचाप सिर झुका लिया ।

‘क्यों ? क्या बात है ।’ मैंने पूछा ।

जीवन बीच ही में बोल उठा—राशन हो गया है न ? तो चीनी नहीं रही ?

उफ़ ! यह नादान बच्चे ? नीना ने मेरी ओर देखा । सेठजी ने अचानक ही कहा—तो इसमें फिक्र करने की क्या बात है ! वाह मिस्टर ठगानी, आप तो तकल्लुफ करते हैं, फिर रामचरन से मुड़कर कहा—बूरा डाल लाओ ।

रामचरन चला गया । सेठजी ने हंसकर कहा—मंगा क्यों न ली आपने ? कैसे पीते होंगे यह बच्चे बिना चीनी की चाय ? आप तो बिल्कुल कुछ चिन्ता ही नहीं करते । अरे घर ही तो है वह भी । जब जी चाहे नौकर को भिजवा दें !

मैं बैठा-बैठा मुग्ध हो रहा था । क्या आदमी है, घमंड तो छूकर नहीं गया । अपनों की तो दिल खोलकर मदद करता है ।

रामचरन बूरा रख गया । नीना चाय बनाने लगी । सेठजी ने कहा—जब राष्ट्रीय सरकार होगी तब यह तकलीफें नहीं होंगी । और एक भारी हास्य प्यालों की चाय पर झनझना उठा ।

‘क्योंकि तब कन्ट्रोल नहीं रहेगा । अंगरेजी सरकार हमें व्यापार तक नहीं करने देती । हमसे तिगुने टैक्स लेती है, लेकिन जब हम देश की दौलत बढ़ाने को ज़रा भी दाम बढ़ाते हैं तब हमपर रोक लगाई जाती है...’

नीना ने रोककर कहा—चाय ठंडी हो जाएगी ।

‘ओह !’ सेठजी ने कहा—हां मिस्टर ठगानी ! आपसे मुझे कुछ काम भी था ।

मेरे मुंह से अनायास ही निकल गया—हाज़िर हूं खिदमत में ।

जब चाय पी चुके तब ड्राइंग रूम में गद्देदार कौच पर बैठते हुए सेठजी ने कहा—आजकल चुनाव हो रहे हैं, जानते ही होंगे ?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार किया । सिगरेट पेश की । उन्होंने एक

जलाकर धन्यवाद देते हुए कहा—तो मैं चाहता हूँ कि कुछ देश और दरिद्रों की सेवा करता ही रहूँ ।

मैंने उत्सुकता से आँखें उठाईं । सेठजी को जैसे कहीं कुछ हिचक हो रही थी । वह कुछ सोच रहे थे । एकाएक कहा—तो मजदूरों की सीटों पर कब्जा जमाना होगा । जानते हैं क्यों ? क्योंकि जो अपना भला करना चाहता है उसे दूसरों का भी भला करना चाहिए । मजदूर हैं, गरीब हैं, लेकिन हैं तो अपने ही । खाते तो हमारा ही नमक हैं ?

परम्परा की यह सौगात मेरी सांस्कृतिक जगह को भर रही थी । मैंने नहीं सोचा कि मैं सेठजी की बात पर अविश्वास करूँ भी तो आखिर क्यों ?

मैंने कहा—कहिए तो क्या करना होगा ?

‘यही’ सेठजी ने कहा—मजदूरों में कुछ रुपया बांटना है । मैं चाहता हूँ आपसे ही यह काम कराया जाए । आप तो जानते ही हैं कि मुझे पलक मारने की भी फुरसत नहीं ।—कितनी छोटी-सी बात थी । मैंने राय दी—उस दिन कारखानों में छुट्टी न दीजिए वरना बेचारों की तनखाह कट जाएगी । इससे बेहतर तो यही हो कि अपना खर्चा ही सही, लारियां तय कर दी जाएं, आएंगी और वोट डलवा दी जाएंगी । उनको भी फायदा होगा और आपके काम में अड़चन भी नहीं पड़ेगी ।

सेठजी हंसे । कहा—वाह ठगानी साहब ! वाह ! भगवान किसी-किसीके दिमाग पर खुद अपनी अवल बेच देता है । आप तो कमाल करते हैं ।

फिर मोटर चली गई । मैंने नीना से कहा—नीना ! उस फूलों के चित्र का क्या हुआ ? प्रारम्भ तो उसका बहुत सुन्दर हुआ था किन्तु...

नीना ने रोककर कहा—लेकिन वह बिगड़ गया । मैंने उसे अपने ही हाथों से फाड़कर फेंक दिया ।

मैंने सुना । कितनी निष्काम साधना !! विस्मय ने सोते हुए आनंद को जगा दिया ।

चार

सेठजी ने प्रसन्न होकर मुझे अपने एक रुपए नफे में दो पैसे का साझीदार बना दिया। आज मैं उनका नौकर ही नहीं साझीदार भी हूँ। मिल में दूर ही से चौकीदार मेरी मोटर देखकर उठ खड़ा होता है।

दोपहर को एकाएक मजदूरों के दो भेट भीतर घुस आए। उनके चेहरों पर बदहवासी छा रही थी। एक ने घबराए हुए स्वर से कहा—
हुजूर !

मैंने आंखें उठाई। देखा। सुना :

‘मजदूरों ने हड़ताल कर दी है।’

मुंशी जी ने चौंककर देखा। मैं उठकर खड़ा हो गया। इधर-उधर टहलने लगा। मुंह से निकला—‘स्ट्राइक !’ उपेक्षा और उपहास ने घृणा से फिर कहा—‘स्ट्राइक’।

एकाएक मैं हंस दिया। मुंशीजी उठकर खड़े हो गए। धीरे से कहा—हुजूर ! यह चुनाव के खेल हैं। इस वक्त मजदूरों में आग भड़काकर अपनी तरफ कर लेना खेल हो रहा है।

मैंने उनकी ओर देखा। पतला-दुबला व्यक्ति। आंखों पर चश्मा। गाल कुछ बैठे हुए। तनखाह शायद सत्तर या अस्सी। इतना तो लड़ाई के दिनों में हर मजदूर कमा लेता है।

मुंशीजी ने फिर कहा—हुजूर ! बात तो कुछ नहीं। यह तो बहती हवा है। इनको तो कुछ बदमाशी करनी चाहिए। शाम को बाजार न गए, मिल में हड़ताल कर दी। यह तो जानते ही हैं कि मिल में उनके बिना काम चलाना मुश्किल है।

‘नहीं !’ मैंने गम्भीरता से कहा—इन सबको निकालकर इतने ही नए मिल सकते हैं। अभी हिन्दुस्तान में ऐसे लोगों की कमी नहीं।

हुजूर यह मजदूरों की शकल नहीं, कुछ पढ़े-लिखे...

‘शोहदे !’ मैंने कहा—नौकरी करना चाहें हम आज दे सकते हैं, मगर इनका मतलब है कि ये हमारे सिर पर मूँग दलेंगे। यह नहीं हो

सकता, मुंशीजी ।—फिर रुककर कहा—लड़ाई खत्म हो गई है लेकिन लड़ाई का ही बोगस मांगते हैं ?

मुंशीजी ने धीरे से कहा—हुजूर वे कहते हैं कि लड़ाई तो खत्म हो गई है लेकिन लड़ाई की महंगाई तो खत्म नहीं हुई । और अभी तक मालिकों को तो लड़ाई के आर्डरों का ही नफा मिल रहा है । वे चोर-बाजारी करते हैं...

‘मुंशीजी’—मैंने काटकर कहा ।

मुंशीजी सहम गए । हिचकते हुए उत्तर दिया—ऐसा उन लोगों को बहकाया गया है हुजूर ।

मैं फिर घूमने लगा । रुककर कहा—मुंशीजी ! चुनाव कब है ?

‘परसों की तारीख है हुजूर ।’

‘अच्छा तो देखो, एक काम करो । देश को इस समय सबकी मदद की जरूरत है । वैसे तो इन जाहिलों की कोई जरूरत नहीं, मगर भीड़ बढ़ाने के लिए इनकी सख्त जरूरत है । कैसे भी हो, मजदूरों को बहकाने वालों का खात्मा करना ही होगा । बदमाशों ने कहा था लड़ाई में मदद दो और अब कहते हैं कि हम चोर हैं । क्या जमाना है ! हां, मुंशीजी ।’

‘हुजूर, मेठजी को फोन कर दीजिए ।’

मुझे क्रोध हुआ । मूर्ख यह भी नहीं जानता कि अब मैं भी उस लाभ-हानि से बंध गया हूं ।

मैंने हसकर कहा—आप अभी वच्चे हैं । ऐसी मामूली बातें तो क्या, इनसे बड़ी परेशानियां हों तो भी मैं अकेला उनके लिए काफी हूं ।

मुंशीजी फिर किर्कतव्यविमूढ़ होने लगे थे । मैंने धीरे से कहा—सुनिए । मजदूरों को खरीद लीजिए । जितने रुपयों की जरूरत हो मुझसे ले जाइए । लेकिन एक भी हाथ से न निकलने पाए ।

न जाने क्यों मुंशीजी मुझे देखकर सहम गए । वे कमरे के बाहर निकल गए । मैं बैठकर सिगरेट पीने लगा ।

शाम को जब मैं घर लौटा उस समय अत्यन्त प्रसन्न था । काम पूरा

हो चुका था। नीना से हंसकर पूरी कहानी सुनी और कहा—भला बताइए न यह वक्त अंग्रेजों से लड़ने का है या इन बातों का ? दुनिया में सभी तो अमीर नहीं होते। फिर दूसरों को देखकर जलने से क्या फायदा ? अब हमसे और कोई क्या अधिक धनी ही नहीं ? पर हम तो जो परमात्मा ने दिया है उसीमें सब्र करते हैं। इसके लिए क्या किया जाए यदि परमात्मा ने उन्हें वह भी नहीं दिया। गरीब तो हैं ही उसपर दुगुने पाप करते हैं—क्यों न परमात्मा उन्हें सब कुछ दे।

कितनी दार्शनिकता है ! संस्कृति बोल रही है। 'चलो, घूम आएं,' मैंने कहा।

बाहर सड़क पर धुंधले अंधेरे में एकाएक मेरे पांव में किसी चीज की ठोकर लगी। नीना के मुंह से एक चीख अनायास ही निकल गई। मैंने कहा—नीना घबराओ नहीं।

भुककर देखा। कोई पड़ा हुआ था। मन में आया चमड़ी उधेड़ दूँ मार-मारकर। इतनी भी तमीज नहीं कि कहां सोना चाहिए !

'क्यों बे ! बीचोंबीच सो रहा है ?' कोई जवाब नहीं।

मैंने क्रोध में पैर से एक हल्की-सी ठोकर दी।

लेकिन फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला। भुककर देखा।

ठोकर लगने पर भी जो आदमी उत्तर नहीं देता वह कभी जिन्दा नहीं होता, मर चुका होता है।

नीना चीखकर पीछे हट गई, किन्तु मैं वहीं खड़ा रहा। न जाने क्यों मेरे दिमाग में एक चोट-सी हुई।

सैकड़ों फौजी लौटकर आ रहे हैं, लाखों मजदूर, करोड़ों किसान अकाल का इन्तजार कर रहे हैं। आज वे सब गुलाम हैं।

यह बच्चा मर चुका है, वही भिखारी का गलीज भयानक बच्चा—

मर चुका है यह इन्सान का नुमायशी जानवर—

मर चुका है यह, जिसपर दुनिया ने कभी अनाथ तक कहकर दया नहीं दिखाई।

लगा जैसे मैं पागल हो उठूंगा । एक दिन जब महिषमर्दिनी काली ने रक्त पीकर मृत्यु के समान नृत्य किया था तब महारुद्र भी शिव बनकर पैरों के नीचे उसका गुस्सा ठंडा करने आकर लेट गए थे, लेकिन आज यह शिव मुर्दा पड़ा है । क्या, लाश जागकर रुद्र बनकर कभी नहीं चिल्ला सकती ?... और न जाने मेरे दिल में कब का बचा इन्सान पुकार उठा :

भौरे अपनी गूँज से छलकर भौरों का शहद चुराते हैं और फूल ?...
मेरे पैरों के पास वह गलीज लाश जो या तो भूख से मरी है, या अत्याचार से... क्योंकि भयानक लू ने फूल को भुलसा दिया है...

नई ज़िंदगी के लिए | ८

इस कहानी के सम्बन्ध में—

कहानी स्त्री और पुरुष की सामाजिक परिस्थिति को लेकर चली है। लड़की का जन्म होता है। पिता को असह्य कष्ट होता है। पुत्र का जन्म होता है, तो आनंद ही आनंद उमड़ता है। किंतु इस पक्ष में स्त्री के जीवन की कितनी क्रूर विडंबना है। स्त्री ही तो स्त्री को जन्म देती है, किंतु स्त्री के लिए दहेज चाहिए, वह पराए घर चली जाती है, यह सब अनेक ऐसे तथ्य हैं, जो समाज में बहुत कठोर हैं, इसीलिए न केवल पुरुष अपने लिए पुत्र चाहता है, वरन् स्त्रियां भी पुत्र को ही महत्व देती हैं। कैंसी भी अजीब लगने वाली हो यह बात, परंतु है यह सत्य और इसलिए होता है ऐसा कि जब लड़की बड़ी होती है तब वह अपनी ही मां के काम नहीं आती, उस समय उसके यदि काम आता है तो बेटा ही। आर्थिक पक्ष ही नहीं, सामाजिक पक्ष में भी लड़का अधिक लाभदायक होता है। हमारे यहां विवाह में स्त्री ही पुरुष के घर जाती है और न जाए तो करे भी क्या ? या तो संसार में विवाह बंद हो जाएं, या पुरुष स्त्री के घर जाकर रहे, किंतु इतिहास उल्टा नहीं जा

सकता। विकास तो और ही तरह का हुआ है। इन सब बातों में एक विषमता है। उस विषमता को मैंने 'नई जिन्दगी के लिए' में उतारा है।

जीवन स्त्री-पुरुष दोनों के द्वारा बनता है। दोनों का एक-दूसरे के बिना काम भी नहीं चलता। तब दोनों की सत्ता का आधार बनता है—प्रेम। प्रेम ही अपने अनेक रूपों में वात्सल्य, श्रद्धा और स्नेह बन जाता है। परिवार मूलतः इन्हींको जीवित रखने के लिए बना है। क्या सचमुच परिवार में आज यह तत्त्व अधिकांश में जीवित हैं? नहीं। उसके कारण अनेक हैं। यहाँ मैंने स्त्री-जन्म के प्रश्न को उठाया है। इस कहानी ने अनेक महिलाओं को विचलित किया है क्योंकि यह बहुत ही संवेदना से लिखी गई है। इसमें पुरुष और स्त्री की सामाजिक परतंत्रता का द्वंद्व बहुत ही तीखे रूप में हुआ है।

लड़की एक नई चेतना है, जो सब पुराने को देखती है; परंतु हर नयापन परंपरा में अपनी सूरत को बदला हुआ पाता है। यही इस जगह मैंने साथ के साथ ही इंगित कर दिया है।

हिंदू समाज कितना कठोर है यह इस कहानी में कितनी सरलता से उठ आया है!

परिवार में लगता है जैसे आतंक है, क्योंकि एक और लड़की ने जन्म लिया है।

कुछ पाठकों ने मुझसे पूछा कि इस कहानी का नाम मैंने ऐसा क्यों रखा? क्या यह नई बच्ची के लिए कहा गया है? नहीं। यह है उस नई जिन्दगी के लिए जिसमें यह सब नहीं होगा। धन की विषमता के कारण जब समाज में बच्ची और बच्चे में भेद नहीं किया जाएगा तब ही हम वास्तव में नई मंजिल पर पहुँच सकेंगे। इसीलिए मैंने इस कहानी को अपनी एक बहुत ही महत्वपूर्ण कहानी माना है कि इसमें मन को छूने वाली तड़पन बहुत ही संयत किंतु तीखी बनकर प्रगट हुई है।

नई ज़िन्दगी के लिए

हम नौ लड़कियां थीं। मेरी उम्र उस समय करीब पन्द्रह साल की थी। मैं समझदार थी। अब जब मैं स्वयं तीन बच्चों की मां हो चुकी हूं, मेरा दृष्टिकोण बहुत बदल गया है, पर तब नई उमर थी। तब क्या मैं इतनी अकल रखती थी कि असलियत को समझ पाती। लेकिन तुम्हें उसी समय की बात सुनाती हूं। पन्द्रह साल में ही मुझे काफी काम करना पड़ता था। मेरी मां को मुझसे बहुत अधिक स्नेह था।

मां के एक और प्रसव होने वाला था। उनके नौ बार लड़कियां हो चुकी थीं। और एक दूसरी बहिन में समय का इतना कम अन्तर होता था कि उन्हें संभालना काफी कठिन हो गया था। कौन जाने घर में अब भी वही चार साल पुरानी हालत चल रही हो।

मुहल्ले में किसी-किसी के ही घर में नल था। हम सड़क से पानी भर लाया करती थीं। जब मैं नल पर पानी भरने लगी तो ठकुराइन ने पूछा—क्यों, तेरी मां के कुछ होने वाला है ?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार कर दिया। ठकुराइन भला चुप होती ! पूछ बैठी—कितने दिन रहे।

मैंने दबी ज़बान से कहा—जल्दी ही।

ठकुराइन मुस्करा दी। मैं उससे डरती थी क्योंकि उसको लड़ने का अच्छा अभ्यास था और चिल्ला-चिल्लाकर मुहल्ले को उठा लेती थी।

शायद सामने की खिड़की में बैठे हुए लड़के ने मेरी बात सुन ली क्योंकि वह हस रहा था। मुझे बस लाज लगी हालांकि बात कोई नहीं हुई थी। मैंने भट से दरवाजा बन्द कर लिया और भीतर आ बैठी।

मां खाट पर पड़ी सो रही थी। बच्चियों में कुछ सो रही थीं, कुछ खेल रही थीं।

सुखदा मुझसे दो बरस छोटी थी। वह कहीं गई हुई थी। उसके कपड़े आंगन में ही पड़े हुए थे।

बाबूजी दफ्तर में नौकरी कर रहे थे। उनकी तनख्वाह अस्सी रुपए से ज्यादा की नहीं थी। मैंने उन्हें कभी प्रसन्न नहीं देखा। उनके माथे पर गहरी लकीरें पड़ी रहती थीं। मूंछें काली और लम्बी थीं। लोग कहते हैं, मैं उन्हींपर गई हूं।

जब वे दफ्तर से लौटते तब भी वे थके-मांदे दिखाई देते, जब जाते तब भी उनमें फर्क दिखाई नहीं देता था। उस थकान के कारण उनके होंठों पर एक कालापन छाया रहता और उनकी आंखों में एक टिमटिमाती सी चमक दिखाई देती थी। दफ्तर से आते ही वह हमें एकदम डांटने लगते। मैं रोने लगती।

हृदय भीतर से घुमड़-घुमड़कर आंखों की राह निकलने लगता, पर उनपर इन सबका कोई असर नहीं होता। छोटी-छोटी बच्चियां अपने छोटे-छोटे हाथों से मुझे सहलाकर सांत्वना देतीं। उनका मूक आश्वासन बहुत सहायक होता। सच, वे बहुत कठोर थे। मैं सोचती, हे भगवान ! दिन भर काम करती हूं। सब घर संभालती हूं पर ये नहीं ठीक रहते। मैं सखी-सहेलियों की ओर देखती, जिनके पिता उन्हें प्रेम करते थे। तब मुझे लगता कि मेरे पिता मनुष्य नहीं थे। शायद उनमें हृदय नहीं था। कभी-कभी क्रोध बढ़ने पर मार-मारकर वे बेहोश कर देते और बच्चियों की कोमल देहों पर नीले-नीले दाग पड़ जाते। जब उनका उठा हुआ नेह चलता ही जाता और बच्चियों की आह से घर फटने लगता, घर में कुहराम मच जाता तब पड़ोस की बुढ़िया दादी का स्वर सुनाई देता—

कन्या पर हाथ उठा रहा है चिरंजी ? यह तो कोई रीत नहीं है । अरे तेरे घर में जनम लिए है निठुर । निर्दयी बस कर क्यों हत्या कर रहा है ।

उस स्वर को सुनकर पिता जैसे चौंक उठते और लौट पड़ते । उनका सिर झुक जाता और वे सूनी आंखों से देखने लगते ।

इधर मां की हालत पहले से भी खराब हो गई थी । वे बाबूजी की मनोव्यथा से पूर्णतया परिचित थीं । आजकल कभी-कभी उन्हें उल्टी हो जाती, कभी मन मितराने लगता । सिर का दर्द बढ़ गया था । हाथ-पांव पीले पड़ चले थे । और मैं जब उन्हें देखती सदैव उनकी आंखों में एक भय ही दिखाई दिया करता था ।

बाबूजी दिन भर पूजा करते । दफ्तर में भी मुंह में हनुमान गुटका रखते जो बाबा सांवलदास ने उन्हें पुत्र होने के लिए दी थी । उन्होंने कहा था इस मन्त्र से कुछ भी बढ़कर नहीं । अगर यह भी काम नहीं देता तो समझ ले तेरे भाग्य में आटे का लड़का भी नहीं लिखा है । पिताजी ने इसे देववाक्य समझकर मन में धारण कर लिया था ।

शाम को जब पीपल की खड़खड़ाहट सुनाई देती, जब अंधेरे में मन्दिर का गंध भरा धुआं गली में लोटने लगता और घर के बाहर के उस तिकोने चबूतरे पर छा जाता, एक छोटे-से निवाड़ के खटोलेपर मैं बैठी अपनी आठवीं और नवीं बहिन को पुचकारती हुई खिलाया करती । कभी-कभी तो मुझे फुसंत मिलती थी । बस उन्हें बुलाया नहीं कि एक छोटे-छोटे पैरों चलती हुई आती और दूसरी घुटनों के बल सरकने लगती । मुझे दोनों अत्यन्त प्रिय मालूम देतीं । बेचारी ! उन्हें कोई स्नेह तक देने वाला न था ।

नींद मुझे इतनी गहरी आती कि ज़रा-सा लेटते ही सारी सुषुप्ति खो जाती, फिर कोई कितनी ही आवाजें दे, सहज में नहीं उठती थी । ठकुरानी मुझसे कहती थी—क्यों पैदा हो गई हो कमबख्तो ! क्या बाबूजी को जिन्दा ही मार डालोगी ?

जब मैं यह सुनती तन-मन रुआसा होने लगता । इसमें हमारा क्या

दोष था। पर जब मैं मां को देखती तो लगता वह सब झूठ था। मां की आंखों में दुख ही दुख था, पर जब मुझे देखतीं तब उनमें एक याचना होती। मैं उस दृष्टि की दयनीयता को देखकर मां की गोद में सिर रखकर उन्हें हंसाने लगती थी। मैं समझती तो थी, पर बात की असलियत को मुझे अभी तक तोलना नहीं आता था।

ठकुरानी कहती थी मारता है ? अरे मारेगा नहीं। नौ-नौ बाघ जिसे पालने पड़े उसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हो जाएगी ? एक नहीं रहोगी। उमर आने पर सब चल दोगी। बेचारे बूढ़े को कंगाल कर जाओगी और उसकी देख-रेख करने वाला तक कोई न रहेगा। कहीं किसीने उसका मुंह ही काला कर दिया तो बेचारे को डूबने तक की ठौर नहीं मिलेगी। राम-राम ! एक हो दो हो। पूरी फौज है। बाप रे, कन्यादान करते-करते ही बेचारे के घुटने टूट जाएंगे।

जब ठकुरानी मुझसे ये बातें करती तो मैं घर में आकर चुपचाप खाट पर पड़ जाती। तब क्या हमें मर जाना चाहिए ?

सदा की भांति इस बार भी बुआ के घर से पहले ही से कुर्ता, टोपी आ गए; जिन्हें देखकर मैं समझी, निश्चय ही अब की बार मेरे एक भाई पैदा होगा। मैंने मां को दिखाए। शाम को जब पिताजी घर आए तो मैंने खुशी-खुशी जाकर कहा—बाबूजी !

उन्होंने गरजकर कहा—क्या है ? अब सुना है।

मां से बाबूजी की एक दिन रात की बात मैंने सुन ली।

बाबूजी कह रहे थे—अगर तुझ जैसी अभागिन मेरे घर न आती तो क्यों मेरी जिन्दगी हराम होती। अब वह बुढ़िया तो जिन्दा नहीं है, जिसने पहली दो बहुएं मरने पर हाय-हाय करके खा डाला था कि बेटा ! ब्याह कर। वर्ना घर का दीप बुझ जाता है। अब जल रहे हैं न चिराग। दिन में भी नहीं बुझते।

उनके स्वर में क्रोध था। मां ने धीरे से कहा—यह तो किसीके बस की बात नहीं। जो भगवान् देता है वह तो सब लेना ही पड़ता है।

अगर ऐसा ही है तो दो-चार का गला घोटकर अपने को आजाद कर लो । उनकी ज़िन्दगी भी हराम करने से क्या मिल जाएगा ।

बाबूजी कभी यहां दौड़ते, कभी वहां । वे हांफ रहे थे । उनका मन विकृत हो रहा था । मुझे उनको देखकर एक भय होने लगा । ऐसा लग रहा था कि आज वे किसीके चंग पर चढ़े हुए थे । क्या होने वाला था, मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया । तभी पिताजी का स्वर सुनाई दिया । उन्होंने पुकारकर कहा—दाई आ गई है ।

एक वूढ़ी ने भीतर प्रवेश किया । मैं उसे जानती थी । वह हमारे घर अक्सर आती थी और हमारे परिवार की अच्छाइयों और बुराइयों से परिचित थी । बिना मेरी सहायता के ही उसने अपनी राह ढूँढ़ ली और भीतर के अंदरे कमरे में चली गई जहां टिमटिमाता दीपक जल रहा था ।

मैं कभी भीतर जाती, कभी बाहर । मेरा दिमाग बिल्कुल बेकार-सा हो गया था । दाई ने मुझे देखा तो कहा—जा बेटी ! थोड़ी देर जाकर सो रह । तुझे इतनी मेहनत की क्या ज़रूरत है । जब ज़रूरत होगी जगा लूंगी ।

मैंने उसमें देवी का अंश देखा । वह मुझे अत्यन्त करुणामयी दिखाई दी । डरती-डरती मैं अपनी कोठरी में आकर खाट पर खड़ी रही । थकान से शरीर चूर-चूर हो रहा था । पड़ते ही मुझे नींद आ गई ।

एकाएक घर में बड़े जोर का शोर हुआ । नींद में पहले तो मैं समझ नहीं सकी । पर जब कोई आकर मेरी खाट से टकराया और गिर पड़ा, हठात् मैं जाग उठी । एकदम आंख खोलने से पहले तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया । पर धीरे-धीरे मैंने पहचाना । वह सुखदा थी । एक-एक करके सब बच्चियां मेरे पास इकट्ठी हो गई थीं ।

मैंने फटी हुई आंखों से देखा । जैसे अभी-अभी उनपर हमला हुआ था । सुखदा फूट-फूटकर रो रही थी । बाकी बच्चियों में से कोई सिसक रही थी । कोई डर से चुप हो गई थी । मेरे सिर में दर्द होने लगा ।

बड़ी कठिनता से मैंने उनको धीरज बंधाया । जब वे चुप हुई तब मैं उठकर कमरे के बाहर आई । जो देखा उससे जैसे मुझपर भयानक चोट हुई । हृदय टूक-टूक हो गया ।

बाबूजी देहलीज पर सिर तोड़ रहे थे । मुझे लगा कि काटने पर भी अब मेरे शरीर से लहू नहीं निकलेगा । घर में एक भयानकता छा गई थी । मैंने मां के कमरे की ओर पग उठाया । दाई ने मुझे हेरा और दया से मेरी ओर देखा । मैं कुछ भी नहीं समझी । मैंने पूछा—क्या हुआ ?

सुना, मेरी एक और बहिन हुई थी ।

इस कहानी के सम्बन्ध में—

गदल मेरी वह कहानी है जिसे मुक्तकण्ठ से मेरे सौभाग्य या दुर्भाग्य से सराहा गया है। सौभाग्य से तो यों कि अचानक मेरी एक कहानी पढ़ी गई तो वह पसंद आ गई और कई मित्रों ने बड़े अफसोस और मजबूरी से अच्छा कहा, परंतु दुर्भाग्य से यों कि ऐसे लोगों ने मेरी इस सफलता को इस प्रकार कम किया—अचानक निकल गई कलम से, अब क्या लिखेंगे ! किंतु पाठकों ने सहृदयता वही रखी, जो सदा रखते थे।

गदल को एक आलोचक ने गुलेरी जी की 'उसने कहा था' के बाद हिंदी की एक महान कहानी कहा—ऐसी जो किसी भी विश्वकलाकार के योग्य होती; तो दूसरे ने कहा—इतनी प्रशंसा करना लेखक के लिए घातक होता है।

अध्यापक आलोचकों ने कुछ नहीं कहा क्योंकि कहानी कोर्स में नहीं थी और वे जो पढ़ते नहीं, उनको पता ही नहीं चला कि ऐसी कोई चीज भी लिखी गई है। गदल का बाहरी महत्व इतना ही है।

गदल मेरी एक पुरानी विचार-दृष्टि में से निकली धारा का एक और बिंदु है। प्रस्तुत संग्रह में मैं अपनी सभी प्रकार की कहानियां नहीं दे सका हूं। अतः जिनको लगा है कि गदल मेरी एक आकस्मिक रचना है, यह उनकी भूल ही है।

गदल ग्राम जीवन का एक चित्र है। गांव में गूजरों का समाज अपनी अलग रीतियां निबाहता है। किंतु गदल केवल उस बाह्य का ही चित्रण नहीं है, उसमें एक स्त्री का हृदय बोलता है, और शायद इसी यथार्थ ने भूमि बनाई। मैं भावपक्ष का अनुरागी हूं, मनुष्य ढूंढता हूं। यह भूमि पर नींव खुदी, और चरित्र को व्यवस्था में से ऊपर लाने का पक्षपाती हूं—यही इसकी इमारत बन गई। बस इतनी सी है यह गदल की कहानी।

गदल लिख जाने के बाद ही मुझे पता चला कि हिंदी आलोचकों में कुछ ज्योतिषी भी हैं। जहां तक उन्होंने लिखा कि अभी तक रांगेय राघव ने सब खराब लिखा वहां तक तो कोई एतराज की बात नहीं थी, पर जब उन्होंने लिखा कि—अब वे आगे कुछ और लिखेंगे भी नहीं, तब मुझे यह सुनकर हंसी आई। और मुझे पता चला कि आलोचना का स्तर कितना उत्तरदायित्वहीन है।

किंतु गदल, फिर भी गदल है और गदल ही रहेगी, इसमें अब मुझे संदेह ही नहीं, संशय भी हो गया है, किंतु यह प्रशंसा अभी समय के थपेड़े भेल लेगी तो ही इसका विश्वास किया जा सकेगा अन्यथा सामयिक प्रशंसा कभी-कभी 'भेड़ चाल' में हो ही जाती है। मुझे गदल कुछ विशेष नहीं लगती, क्योंकि जैसे मैंने गदल का पात्र खड़ा किया है, सभी कहानियों में मैंने एक पात्र दिया है अतः गदल में क्या है जो अन्यो में नहीं, यह मैं समझ नहीं सका हूं। मैं यही मानता हूं गदल पढ़ी गई है, अन्य कहानियां अभी पढ़ी नहीं गईं।

गदल

बाहर शोर-गुल मचा । डोड़ी ने पुकारा—कोन है ?

कोई उत्तर नहीं मिला । आवाज आई—हत्यारिन ! तुझे कतल कर दूंगा !

स्त्री का स्वर आया—करके तो देख ! तेरे कुनबे को डायन बनके न खा गई, निपूते !

डोड़ी बैठा न रह सका । बाहर आया ।

‘क्या करता है, क्या करता है, निहाल ?’—डोड़ी बढ़कर चिल्लाया—आखिर तेरी मैया है ।

‘मैया है !’—कहकर निहाल हट गया ।

‘अरे तू हाथ उठाके तो देख !’—स्त्री ने फुफकारा—कढ़ी खाये ! तेरी सींक पर बिलियां चलवा दू ! समझ रखियो ! मत जान रखियो, हां ! तेरी आसरतू नहीं हूं ।

‘भाभी !’—डोड़ी ने कहा—क्या बकती है ? होश में आ !

वह आगे बढ़ा । उसने मुड़कर कहा—जाओ सब ! तुम सब लोग जाओ !

निहाल हट गया । उसके साथ ही सब लोग इधर-उधर हो गए ।

डोड़ी निस्तब्ध छप्पर के नीचे लगा बरेंडा पकड़े खड़ा रहा । स्त्री वहीं बिखरी हुई-सी बैठी रही । उसकी आंखों में आग-सी जल रही थी ।

उसने कहा—मैं जानती हूँ, निहाल में इतनी हिम्मत नहीं । यह सब तैने किया है, देवर !

‘हां, गदल !’—डोड़ी ने धीरे से कहा—मैंने ही किया है ।

गदल सिमट गई । कहा—क्यों, तुझे क्या जरूरत थी ?

डोड़ी कह नहीं सका । वह ऊपर से नीचे तक झनझना उठा । पचास साल का वह लम्बा खारी गूजर, जिसकी मूँछें खिचड़ी हो चुकी थीं, छप्पर तक पहुंचा-सा लगता था । उसके कंधे की चौड़ी हड्डियों पर अब दीये का हल्का प्रकाश पड़ रहा था, उसके शरीर पर मोटी फतूही थी और उसकी धोती घुटनों के नीचे उतरने के पहले ही झूज देकर चुस्त-सी ऊपर की ओर लौट जाती थी । उसका हाथ कर्कश था और वह इस समय निस्तब्ध खड़ा रहा ।

स्त्री उठी । वह लगभग ४५ वर्षीया थी, और उसका रंग गोरा होने पर भी आयु के घुंघलके में अब मैला-सा दिखने लगा था । उसको देखकर लगता था कि वह फुर्तीली थी । जीवन भर कठोर मेहनत करने से, उसकी गठन के ढीले पड़ने पर भी, उसकी फुर्ती अभी तक मौजूद थी ।

‘तुझे शरम नहीं आती, गदल ?’—डोड़ी ने पूछा ।

‘क्यों, शरम क्यों आएगी ?’—गदल ने पूछा ।

डोड़ी क्षण भर सकते में पड़ गया । भीतर के चौबारे से आवाज आई—शरम क्यों आएगी इसे ? शरम तो उसे आए, जिसकी आंखों में हया बची हो ।

‘निहाल !’—डोड़ी चिल्लाया—तू चुप रह ।

फिर आवाज बन्द हो गई ।

गदल ने कहा—मुझे क्यों बुलाया है तूने ?

डोड़ी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया । पूछा—रोटी खाई है ?

‘नहीं ।’—गदल ने कहा—खाती भी कब ? कमबख्त रास्ते में मिले । खेत होकर लौट रही थी । रास्ते में अरने-कण्डे बीनकर संभा के लिए ले जा रही थी ।

निहाल चिल्लाया—सुन ले, परमेसुरी, जगहंगाई हो रही है।
खारियों की तो तूने नाक कटाकर छोड़ी।

दो

गुन्ना मरा, तो पञ्चान बरस का था। गदल विधवा हो गई। गदल का बड़ा बेटा निहाल तीस बरस के पास पहुंच रहा था। उसकी यह दुल्लो का बड़ा बेटा सात का, दूसरा चार का और तीसरी छोरी थी जो उसकी गोद में थी। निहाल से छोटी तरा-ऊपर की दो बहिनें थीं चंपा और चमेली, जिनका क्रमशः भाज और विस्वारा गांवों में ब्याह हुआ था। आज उनकी गोदियों से उनके लाल उतरकर धूल में घुटसुव चलने लगे थे। अन्तिम पुत्र नरायन अब बाईस का था, जिसकी बहू दूसरे बच्चे की मां होने वाली थी। ऐसी गदल, इतना बड़ा परिवार छोड़कर चली गई थी और बत्तीस साल के एक लौहरे गूजर के यहां जा बैठी थी।

डोड़ी गुन्ना का सगा भाई था। बहू थी, बच्चे भी हुए। सब मर गए। अपनी जगह अकेला रह गया। गुन्ना ने बड़ी-बड़ी कही, पर वह फिर अकेला ही रहा, उसने ब्याह नहीं किया, गदल ही के चूल्हे पर खाता रहा। कमाक' जाता, वो उसीको दे देता, उसीके बच्चों को अपना मानता, कभी उसने अलगाव नहीं किया। निहाल अपने चाचा पर जान देता था। और फिर खारी गूजर अपने को लौहरों से ऊंचा समझते थे।

गदल जिसके घर जा बैठी थी, उसका पूरा कुनबा था। उसने गदल की उम्र नहीं देखी, यह देखा कि खारी औरत है, पड़ी रहेगी। चूल्हे पर दम फूंकने वाली की जरूरत भी थी।

आज ही गदल सबेरे गई थी और शाम को उसके बेटे उसे फिर

बांध लाए थे । उसके नए पति मौनी को अभी पता भी नहीं हुआ होगा । मौनी रंडुवा था । उसकी भाभी जो पांव फैंलाकर मटक-मटककर छाछ बिलोती थी ।

दुल्लो सुनेगी तो क्या कहेगी ?

गदल का मन विक्षोभ से भर उठा ।

आधी रात हो चली थी । गदल वहीं पड़ी थी । डोड़ी वहीं बैठा चिलम फूंक रहा था ।

उस सप्ताटे में डोड़ी ने धीरे से कहा—गदल ।

‘क्या है ?’—गदल ने हौले से कहा ।

तू चली गई न ?

गदल बोली नहीं । डोड़ी ने फिर कहा—सब चले जाते हैं । एक दिन तेरी देवरानी चली गई, फिर एक-एक करके तेरे भतीजे भी चले गए । भैया भी चला गया । पर तू जैसी गई, वैसे तो कोई भी नहीं गया । जग हंसता है, जानती है ?

गदल बुरबुराई—जग हंसाई से मैं नहीं डरती देवर ! जब चौदह की थी, तब तेरा भैया मुझे गांव में देख गया था । तू उसके साथ तेल-पिया लट्ट लेकर मुझे लेने आया था न, तब ? तब मैं आई थी कि नहीं ? तू सोचता होगा कि गदल की उमिर गई, अब उसे खसम की क्या जरूरत है ? पर जानता है, मैं क्यों गई ?

‘नहीं ।’

‘तू तो बस यही सोचा करता होगा कि गदल गई, अब पहले-सा रोटियों का आराम नहीं रहा । बहुएं नहीं करेंगी तेरी चाकरी देवर ! तूने भाई से और मुझसे निभाई, तो मैंने भी तुझे अपना ही समझा ! बोल, झूठ कहती हूं ?’

‘नहीं, गदल मैंने कब कहा ।’

‘बस यही बात है देवर ! अब मेरा यहां कौन है ! मेरा मरद तो मर गया । जीते जी मैंने उसकी चाकरी की, उसके नाते उसके सब अपनों

की चाकरी बजाई। पर जब मालिक ही न रहा, तो काहे को हड़कम्प उठाऊँ ! यह लड़के, यह बहुएं ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूंगी !'

'पर क्या यह सब तेरी औलाद नहीं, बाबरी। बिल्ली तक अपने जायों के लिए सात घर उलट-फेर करती है, फिर तू तो मानुष है। तेरी माया-ममता कहां चली गई ?'

'देवर, तेरी कहां चली गई थी, जो तूने फिर ब्याह न किया ?'

'मुझे तेरा सहारा था गदल !'

'कायर ! भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया, तब तू मुझे रखकर घर नहीं बसा सकता था ! तूने मुझे पेट के लिए पराई ड्यूँदी लंघवाई। चूल्हा मैं तब फूकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बांदी नहीं हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों के बिछिया भनके। मैं तो पेट तब भरूंगी, जब पेट का मोल कर लूंगी। समझा, देवर ! तूने तो नहीं कहा तब। अब कुनबे की नाक पर चोट पड़ी, तब सोचा। तब न सोचा, जब तेरी गदल को बहुओं ने आंखें तरेर कर देखा। अरे, कौन किसकी परवाह करता है !'

'गदल !'—डोड़ी ने भर्राए स्वर में कहा—मैं डरता था।

'भला क्यों तो ?'

'गदल, मैं बुढ़ा हूँ। डरता था, जग हंसेगा। बेटे सोचेंगे, शायद चाचा का अम्मा से पहले ही से नाता था, तभी चाचा ने दूसरा ब्याह नहीं किया। गदल, भैया की भी बदनामी होती न ?'

'अरे चल रहने दे !' गदल ने उत्तर दिया—भैया का बड़ा ख्याल रहा तुझे ! तू नहीं था कारज में उनके क्या ? भैरे सुसर मरे थे, तब तेरे भैया ने बिरादरी को जिमाकर ओठों से पानी छुलाया था अपने। और तुम सबने कितने बुलाए ? तू भैया, दो बेटे। यही भैया हैं, यही बेटे हैं ? पच्चीस आदमी बुलाए कुल। क्यों आखिर ? कह दिया लड़ाई में कानून है। पुलिस पच्चीस से ज्यादा होते ही पकड़ ले जाएगी ! डरपोक कहीं के ! मैं नहीं रहती ऐसों के !'

हठात् डोड़ी का स्वर बदला । कहा—मेरे रहते तू पराए मरद के जा बैठेगी ?

‘हां ।’

‘अबके तो कह !’—वह उठकर बढ़ा ।

‘सौ बार कहूं लाला !’—गदल पड़ी-पड़ी बोली ।

डोड़ी बढ़ा ।

‘बढ़ !’—गदल ने फुफकारा ।

डोड़ी रुक गया । गदल देखती रही । डोड़ी जाकर बैठ गया । गदल देखती रही । फिर हंसी । कहा—तू मुझे करेगा ! तुझमें हिम्मत कहां है देवर ? मेरा नया मरद है न ? मरद है । इननी सुन तो ले भला । मुझे लगता है तेरा भश्या ही छिर मिल गया है मुझे । तू ?—वह रुकी—मरद है ! अरे कोई बैयर स धिधियाता है ? बढ़कर जो तू मुझे मारता, तो मैं समझती, तू अपनापा मानता है । मैं इस घर में रहूंगी ?

डोड़ी देखता ही रह गया । रात गहरी हो गई । गदल ने लंहगे की पत्तं फैलाकर तन ढंक लिया । डोड़ी ऊंघने लगा ।

तीन

ओसारे में दुल्लो ने अंगड़ाई लेकर कहा—आ गई देवरानीजी । रात कहां रहीं ?

सूका झूब गया था । आकाश में पी फट रही थी । बैल अब उठकर खड़े हो गए थे । हवा में एक ठण्डक थी ।

गदल ने तड़ाक से जवाब दिया—सो, जिठानी मेरी ! हुकुम नहीं चला मुझपर । तेरी जैसी बेटियां हैं मेरी । देवर के नाते देवरानी हूं, तेरी झूती नहीं ।

दुल्लो सकपका गई । मौनी उठा ही था । भन्नाया हुआ आया । बोला—कहां गई थी ?

गदल ने घूँघट खींच लिया, पर आवाज नहीं बदली । कहा—वही

ले गए मुझे घेर कर ! मोका पाके निकल आई ।

मौनी दब गया । मौनी का बाप बाहर से ही ढोर हांक ले गया ।
मौनी बढ़ा ।

‘कहां जाता है ?’—गदल ने पूछा ।

‘खेतहार ।’

‘पहले मेरा फैसला कर जा ।’—गदल ने कहा ।

दुल्लो उस अघेड़ स्त्री के नक्शे देखकर अचरज में खड़ी रही ।

‘कैसा फैसला ?’—मौनी ने पूछा । वह उस बड़ी स्त्री से दब गया था ।

‘अब क्या तेरे घर का पीसना पीसूंगी मैं ?’—गदल ने कहा—
हम तो दो जने हैं । अलग करेंगे, खाएंगे ।—उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए
बिना ही वह कहती रही—कमाई शामिल करो, मैं नहीं रोकती, पर
भीतर तो अलग-अलग भले ।

मौनी क्षण भर सन्नाटे में खड़ा रहा । दुल्लो तिनककर निकली ।
बोली—अब चुप क्यों हो गया, देवर ? बोलता क्यों नहीं ? मेरी देवरानी
लाया है कि सास ! तेरी बोलती क्यों नहीं कढ़ती ? ऐसी न समझियो
तू मुझे ! रोटी तवा पर पलटते मुझे भी आंच नहीं लगती, जो मैं इसकी
खरी-खोटी सुन लूंगी, समझा ? मेरी अम्मा ने भी मुझे चूल्हे की मट्टी
खाके ही जना था । हां !

‘अरी तो सीत !’—गदल ने पुकारा—मट्टी न खा के आई, सारे
कुनबे को चबा जाएगी, डायन ! ऐसी नहीं तेरी गुड़ की भेली है, जो न
खाएंगे हम, तो रोटी गले में फंदा मार जाएगी ।

मौनी उत्तर नहीं दे सका । वह बाहर चला गया । दुपहर हो गई ।
दुल्लो बैठी चरखा कात रही थी । नरायन ने आकर आवाज दी—
कोई है ?

दुल्लो ने घूँघट काढ़ लिया । पूछा—कौन हो ?

नरायन ने खून का घूँट पीकर कहा—गदल का बेटा हूँ ।

दुल्लो घूँघट में हंसी । पूछा—छोटे हो कि बड़े ?

‘छोटा ।’

‘और कितने हैं ?’

‘कित्ते भी हों । तुम्हे क्या ?’—गदल ने निकलकर कहा ।

‘अरे आ गई !’—कहकर दुल्लो भीतर भागी ।

‘आने दे आज उसे । तुम्हे बता दूंगी जिठानी !’—गदल ने सिर हिलाकर कहा ।

‘अम्मा !’—नरायन ने कहा—यह तेरी जिठानी है ?

‘क्यों आया है तू ? यह बता !’—गदल भल्लाई ।

‘दण्ड घरवाने आया हूं, अम्मा !’—कहकर नरायन आगे बैठने को बढ़ा ।

‘वहीं रह !’—गदल ने कहा ।

उसी समय लोटा-डोर लिए मौनी लौटा । उसने देखा कि गदल ने अपने कड़े और हंसली उतारकर फेंक दी और कहा—भर गया दण्ड तेरा । अब मत आइयो कोई । समझ लीजो थाने में रपट कर दूंगी कि मेरे मरद का सब माल दबाकर बहुओं के कहने से बेटों ने मुझे निकाल दिया है ।

नरायन का मुंह स्याह पड़ गया । वह गहने उठाकर चला गया । मौनी मन ही मन शंकित-सा भीतर आया ।

दुल्लो ने शिकायत की—सुना तूने देवर ! देवरानी ने गहने दे दिए । घुटना आखिर पेट को ही मुड़ा । चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डोर पर डण्डा-थूआ तक लग जाएंगे, पक्का चबूतरा घर के आगे बन जाएगा समझा देती हूं । तुम भोले-भाले ठहरे । तिरिया चरित्तर तुम क्या जानो । धंधा है यह भी । अब कहेगी, फिर बनवा मुझे ।

गदल हंसी, कहा—वाह जिठानी ! पुराने मरद का मोल नए मरद से तेरे घर की बैयर ही चुकवाती होंगी । गदल तो मालकिन बनकर रहती है, समझी ! बांदी बनकर नहीं । चाकरी कछंगी तो अपने मरद

की, नहीं तो बिघना मेरे ठेंगे पर । समझी ! तू बीच में बोलने वाली कौन ?

दुल्लो ने रोष से देखा और पांव पटकती चली गई ।

मोनी ने देखा और कहा—बहुत बढ़-बढ़कर बातें मत हांक, समझ ले, घर में बहू बनकर रह !

‘अरे तू तो तब पैदा भी नहीं हुआ था, वालम !’—गदल ने मुस्कुराकर कहा—तब से मैं सब जानती हूं । मुझे क्या सिखाता है तू ? ऐसा कोई मैंने काम नहीं किया है, जो बिरादरी के नेम के बाहर हो । जब तू देखे, मैंने ऐसी कोई बात की हो, तो हजार बार रोक, पर सौत की ठसक नहीं सहूंगी ।

‘तो बताऊं तुझे !’—वह सिर हिलाकर बोला ।

गदल हंसकर ओबरी में चली गई और काम में लग गई ।

चार

ठंडी हवा तेज हो गई थी । डोड़ी चुपचाप बाहर छप्पर में बैठा हुक्का पी रहा था । पीते-पीते ऊब गया और उसने चिलम उलट दी और फिर बैठा रहा ।

खेत से लौटकर निहाल ने बैल बांधे, न्यार डाला और कहा—काका !

डोड़ी कुछ सोच रहा था । उसने सुना नहीं ।

‘काका !’—निहाल ने स्वर उठाकर कहा ।

‘हे !’ डोड़ी चौंक उठा—क्या है ? मुझसे कहा कुछ ?

‘तुमसे न कहूंगा, तो कहूंगा किससे ? दिन भर तो तुम मिले नहीं । चिम्मन कढ़ेरा कहता था, तुमने दिन भर मनमौजी बाबा की धूनी के पास बिताया । यह सच है ?’

‘हां, बेटा, चला तो गया था ।’

‘क्यों गए थे भला ?’

‘ऐसे ही जी किया था, बेटा ।’

‘और कस्बे से बनिए का आदमी आया था, घी कटऊ क्या कराया मैंने कहा नहीं है, वह बोला, लेके जाऊंगा । भगड़ा होते-होते बचा ।’

‘ऐसा नहीं करते, बेटा ।’—डोड़ी ने कहा—‘बौहर से कोई भगड़ा मोल लेता है ?’

निहाल ने चिलम उठाई, कंडों में से आंच बीनकर धरी और फूंक लगाता हुआ आया । कहा—‘मैं तो गया नहीं । सिर फूट जाते । नरायन को भेजा था ।’

‘कहां !’—डोड़ी चौंका ।

‘उसी कुलच्छनी कुल बोरनी के पास ।’

‘अपनी मां के पास ?’

‘न जाने तुम्हें उससे क्या है, अब भी तुम्हें उसपर गुस्सा नहीं आता । उसे मां कहूंगा मैं ?’

‘पर बेटा, तू न कह, जग तो उसे तेरी मां ही कहेगा । जब तक मरद जीता है, लोग बैयर को मरद की वहू कहकर पुकारते हैं, जब मरद मर जाता है, तो लोग उसे बेटे की अम्मा कहकर पुकारते हैं । कोई नया नेम थोड़ा ही है ।’

निहाल भुनभुनाया । कहा—‘ठीक है, काका, ठीक है, पर तुमने अभी तक ये तो पूछा ही नहीं कि क्यों भेजा था उसे ?’

‘हां बेटा ।’—डोड़ी ने चौंकर कहा—‘यह तो तूने बताया ही नहीं ! बता न ?’

‘दण्ड भरवाने भेजा था । सो पंचायत जुड़वाने के पहले ही उसने तो गहने उतार फेंके ।’

डोड़ी मुस्कराया । कहा—‘तो वह यह जता रही है कि घर वालों ने पंचायत भी नहीं जुड़वाई ? यानी हम उसे भगाना ही चाहते थे । नरायन ले आया ?’

‘हां ।’

डोड़ी सोचने लगा ।

‘मैं फेर आऊं ?’—निहाल ने पूछा ।

‘नहीं बेढा ।’—डोड़ी ने कहा—वह सचमुच रुठकर ही गई है ।
और कोई बात नहीं है । तूने रोटी खा ली ?

‘नहीं ।’

‘तो जा पहले खा ले ।’

निहाल उठ गया, पर डोड़ी बैठा रहा । रात का अंधेरा सांभ के पीछे ऐसे आ गया, जैसे कोई पर्त उलट गई हो ।

दूर ढोला गाने की आवाज आने लगी । डं डी उठा और चल पड़ा ।

निहाल ने बहू से पूछा—काका ने खा ली ?

‘नहीं तो ।’

निहाल बाहर आया । काका नहीं थे ।

‘काका !’—उसने पुकारा ।

राह पर चिरंजी पुजारी गढ़वाले हनुमानजी के पट बंद करके आ रहा था । उसने पूछा—क्या है, रे ?

‘पाय लागू, पंडितजी ।’—निहाल ने कहा—काका अभी तो बैठे थे ।

चिरंजी ने कहा—अरे, वह वहां ढोला सुन रहा है । मैं अभी देखकर आया हूं ।

चिरंजी चला गया, निहाल ठिठका खड़ा रहा । बहू ने भांककर पूछा—क्या हुआ ?

‘काका ढोला सुनने गए हैं !’—निहाल ने अविश्वास से कहा—वे तो नहीं जाते थे ।

‘जाकर बुला ले आओ । रात बढ़ रही है ।’—बहू ने कहा । और रोते बच्चे को दूध पिलाने लगी ।

निहाल जब काका को लेकर लौटा, तो काका की देही तप रही थी ।

‘हवा लग गई है और कुछ नहीं ।’—डोड़ी ने छोटी खटिया पर

अपनी निकली टांगें समेटकर लेटते हुए कहा—रोटी रहने दे, आज जी नहीं चाहता ।

निहाल खड़ा रहा । डोड़ी ने कहा—अरे, सोच तो, बेटा । मैंने ढोला कितने दिन बाद सुना है । उस दिन भैया की सुहागरात को सुना था, या फिर आज...।

निहाल ने सुना और देखा, डोड़ी आंख मींचकर कुछ गुनगुनाने लगा था...

पांच

शाम हो गई थी । मौनी बाहर बैठा था । गदल ने गरम-गरम रोटी और आम की चटनी ले जाकर खाने को धर दी ।

‘बहुत अच्छी बनी है ।’—मौनी ने खाते हुए कहा—बहुत अच्छी है ।

गदल बैठ गई । कहा—तुम एक व्याह और क्यों नहीं कर लेते अपनी उमिर लायक ?

मौनी चौंका । कहा—एक की रोटी भी नहीं बनती ।

‘नहीं ।’—गदल ने कहा—सोचते होंगे सौत बुलाती हूं, पर मरद का क्या ? मेरी भी तो ढलती उमिर है । जीते जी देख जाऊंगी तो ठीक है । न हो तो हुकूमत करने को तो एक मिल ही जाएगी ।

मौनी हंसा । बोला—यों कह ! हाँस है तुम्हें, लड़ने को कोई चाहिए ।

खाना खाकर उठा, तो गदल हुक्का भरकर दे गई और आप दीवार की ओट में बैठकर खाने लगी ।

इतने में सुनाई दिया—अरे, इस बखत कहां चला ?

‘जरूरी काम है, मौनी ।’—उत्तर मिला । पेंसकार साब ने बुलवाया है ।

गदल ने पहचाना । उसीके गांव का तो था, घोठ्या मैना का चुन्दा गिर्राज ग्वारिया । जरूर पेंसकार की गाय को चराने की बात होगी ।

‘अरे तो रात को जा रहा है ?’—मौनी ने कहा—ले चिलम तो पीता जा ।

आकर्षण ने रोका । गिराज बैठ गया । गदल ने दूसरी रोटी उठाई ।
कौर मुंह में रखा ।

‘तुमने सुना ?’—गिराज ने कहा और दम खींचा ।

‘क्या ?’—मौनी ने पूछा ।’

‘गदल का देवर डोड़ी मर गया ।’

गदल का मुंह रुक गया । जल्दी से लोटे के पानी के संग कौर
निगला और सुनने लगी । कलेजा मुंह को आने लगा ।

‘कैसे मर गया ?’—मौनी ने कहा । वह तो भला-चंगा था !

‘ठंड लग गई । रात उघाड़ा रह गया ।’

गदल द्वार पर दिखाई दी । कहा—गिराज !

‘काकी !’—गिराज ने कहा—सच । मरते बखत उसके मुंह से
तुम्हारा नाम कड़ा था, काकी ! बिचारा बड़ा भला मानस था ।

गदल स्तब्ध खड़ी रही ।

गिराज चला गया ।

गदल ने कहा—सुनते हो ?

‘क्या है री ?’

‘मैं ज़रा जाऊंगी ।’

‘कहां ?’—वह आतंकित हुआ ।

‘वहीं ।’

‘क्यों ?’

‘देवर मर गया है न ?’

‘देवर ! अब तो वह तेरा देवर नहीं ।’

गदल हंसी झनझनाती हुई हंसी—देवर तो मेरा अगले जनम में
भी रहेगा । वही न मुझसे रुखाई दिखाता, तो क्या यह पांव कटे बिना
उस देहली से बाहर निकल सकते थे ? उसने मुझसे मन फेरा, मैंने
उससे । मैंने ऐसा बदला लिया उससे !

कहते-कहते वह कठोर हो गई ।

‘तू नहीं जा सकती ।’—मौनी ने कहा ।

‘क्यों ?’—गदल ने कहा—तू रोकेगा ? अरे, मेरे खास पेट के जाए मुझे रोक न पाए । अब क्या है ? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन ? अपने मन से आई थी, रहूंगी, नहीं रहूंगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है ! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में, तो जीभ कढ़वा लेती तेरी ।

‘अरी चल-चल !’

मौनी ने हाथ पकड़कर उसे भीतर धकेल दिया और द्वार पर खाट डालकर लेटकर हुक्का पीने लगा ।

गदल भीतर रोने लगी, परन्तु इतनी धीरे कि उसकी सिसकी तक मौनी नहीं सुन सका । आज गदल का मन बहा जा रहा था ।

रात का तीसरा पहर बीत रहा था । मौनी की नाक बज रही थी । गदल ने पूरी शक्ति लगाकर छप्पर का कोना उठाया और सांपिन की तरह उसके नीचे से रेंगकर दूसरी ओर कूद गई ।

छः

मौनी रह-रहकर तड़पता था । हिम्मत नहीं होती थी कि जाकर सीधे गांव में हल्ला करे और लठ्ठ के बल पर गदल को उठा लाए । मन करता, सुसरी की टांगें तोड़ दे । दुल्लो ने व्यंग भी किया कि उसकी लुगाई भागकर नाक कटा गई है, खून का-सा घूंट पीकर रह गया । गूजरों ने जब सुना, तो कहा—अरे बुढ़िया के लिए खून-खराबी कराएगा और अभी तेरा उसने खरच ही क्या कराया है । दो जून रोटी खा गई है, तुझे भी तो टिक्कड़ खिलाकर ही गई है ?

मौनी का क्रोध भड़क गया ।

घोटथा का गिराज सुना गया था ।

जिस वक्त गदल पहुंची, पटेल बैठा था । निहाल ने कहा था—खबरदार ! भीतर पांव न धरियो ! क्यों लौट आई है ?

पटेल चौंका था। बोला अब क्या लेने आई है, बहू ?

गदल बैठ गई। कहा—जब छोटी थी, तभी मेरा देवर लट्टु बांध मेरे खसम के साथ आया था। इसीके हाथ देखती रह गई थी मैं तो। सोचा था मरद है, इसकी छत्तर-छाया में जी लूंगी। बताओ, पटेल, वह ही जब मेरे आदमी के मरने के बाद मुझे न रख सका, तो क्या करती ? अरे, मैं न रही, तो इनसे क्या हुआ ? दो दिन में काका उठ गया न ? इनके सहारे मैं रहती तो क्या होता ?

पटेल ने कहा—पर तूने बेटा-बेटी की उमर न देखी बहू !

‘ठीक है,’ गदल ने कहा—उमर देखती कि इज्जत, यह कहो। मेरी देवर से रार थी, खतम हो गई। ये बेटा हैं, मैंने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझपर दावा करो। पंचायत में जवाब दूंगी। लेकिन बेटों ने बिरादरी के मुंह पर थूका, तब तुम सब कहाँ थे ?

‘सो कब ?’—पटेल ने आश्चर्य से पूछा।

‘पटेल न कहेंगे तो कौन कहेगा ? पच्चीस आदमी खिलाकर लटा दिया मेरे मरद के कारज में !’

‘पर पगली यह तो सरकार का कानून था।’

‘कानून था !’—गदल हंसी—सारे जग में कानून चल रहा है, पटेल ? दिन-दहाड़े भैस खोलकर लाई जाती है। मेरे ही मरद पर कानून था ? यों न कहोगे, बेटों ने सोचा, दूसरा अब क्या धरा है, क्यों पैसा बिगाड़ते हो ? कायर कहीं के !

निहाल गरजा—कायर ? हम कायर ? तू सिधनी ?

‘हां मैं सिधनी !’—गदल तड़पी—बोल तुझमें है हिम्मत ?

‘बोल !’—वह भी चिल्लाया।

‘जा, बिरादरी कारज में न्यौता दे काका के !’—गदल ने कहा।

निहाल सकपका गया। बोला—पुलस...

गदल ने सीना ठोककर कहा—बस ?

‘लुगाई बकती है।’ पटेल ने कहा—गोली चलेगी, तो ?

गदल ने कहा—धरम-धुरन्दरों ने तो डुबो ही दी। सारी गुजरात ही डूब गई, माघो। अब किसीका आसरा नहीं, कायर ही कायर बसे हैं।

फिर अचानक कहा—मैं करूँ परबन्ध ?

‘तू ?’—निहाल ने कहा।

‘हां, मैं !’—और उसकी आंखों में पानी भर आया। कहा—वह मरते बखत मेरा नाम लेता गया है न, तो उसका परबन्ध मैं ही करूंगी।

मौनी आश्चर्य में था। गिराज ने बताया था कि कारज का जोरदार इन्तजाम है। गदल ने दरोगा को रिश्वत दी है। वह उधर आएगा ही नहीं। गदल बड़ा इन्तजाम कर रही है। लोग कहते हैं, उसे अपने मरद का इतना गम नहीं हुआ था, जितना अब लगता है।

गिराज तो चला गया था, पर मौनी में विष भर गया था। उसने उठते हुए कहा—तो गदल ! तेरी भी मन की होने दूँ, सो गोला का मौनी नहीं। दरोगा का मुँह बन्द कर दे, पर उससे भी ऊपर एक दर्बार है। मैं कस्बे में बड़े दरोगा से शिकायत करूँगा।

सात

कारज हो रहा था। पातें बैठतीं, जीवतीं, उठ जातीं और कढ़ाव से पुए उतरते।

बाहर मरद इन्तजाम कर रहे थे, खिला रहे थे। निहाल और नरायन ने लड़ाई में मंहगा नाज बेचकर जो घड़ों में नोटों की चांदी बनाकर डाली थी, वह निकली और बौहरे का कर्ज चढ़ा। पर डांग में लोगों ने कहा—गदल का ही बूता था। बेटे तो हार बैठे थे। कानून क्या बिरादरी से ऊपर है ?

गदल थक गई थी। औरतों में बैठी थी। अचानक द्वार में से सिपाही सा दीखा। बाहर आ गई। निहाल सिर झुकाए खड़ा था।

‘क्या बात है, दीवानजी ?’—गदल ने बढ़कर पूछा।

स्त्री का बढ़कर पूछना देख दीवान सकपका गया।

निहाल ने कहा—कहते है कारज रोक दो ।

‘सो कैसे ?’—गदल चौकी ।

‘दरोगाजी ने कहा है ।’—दीवानजी ने नम्र उत्तर दिया ।

‘क्यों ? उनसे पूछकर ही तो किया जा रहा है ।’—उसका स्पष्ट संकेत था कि रिश्तत दी जा चुकी है ।

दीवान ने कहा—जानता हूं, दरोगाजी तो मेल-मुलाकात मानते हैं, पर किसीने बड़े दरोगाजी के पास शिकायत पहुंचाई है, दरोगाजी को आना ही पड़ेगा । इसीसे उन्होंने कहला भेजा है कि भीड़ छांट दो । वर्ना कानूनी कार्रवाई करनी ही पड़ेगी ।

क्षण भर गदल ने सोचा । कौन होगा वह ? समझ नहीं सकी । बोली—दरोगाजी ने पहले नहीं सोचा था यह सब, अब बिरादरी को उठा दें ? दीवानजी, तुम भी बैठकर पत्तल परोसवा लो । होगी सो देखी जाएगी । हम खबर भेज देंगे, दरोगा आते ही क्यों हैं ? वे तो राजा हैं ।

दीवानजी ने कहा—सरकारी नौकरी है । चली न जाएगी ? आना ही होगा उन्हें ।

‘तो आने दो !’—गदल ने चुभते स्वर से कहा—आदमी का वचन एक बार का होता है । हम बिरादरी को नहीं उठा सकते ।

नरायन घबराया । दीवानजी ने कहा—सब गिरफ्तार कर लिए जाएंगे । समझी ! राज से टक्कर लेने की कोशिश न करो ।

अरे तो क्या राज बिरादरी से ऊपर है ?—गदल ने तमककर कहा—राज के पीसे तो आज तक पिसे हैं, पर राज के लिए धरम नहीं छोड़ देंगे, तुम सुन लो ! तुम धरम छीन लो, तो हमें जीना हराम है !

गदल के पांव के धमाके से धरती चल गई ।

तीन पांते और उठ गईं, अन्तिम पांत थी ।

निहाल ने अंधेरे में देखकर कहा—नरायन, जल्दी कर । एक पांत बची है न ?

गदल ने छप्पर की छाया में से कहा—निहाल !

निहाल गया ।

‘डरता है ?’—गदल ने पूछा ।

सूखे होंठों पर जीभ फेरकर उसने कहा—‘नहीं ।’

‘मेरी कोख की लाज करनी होगी तुझे ।’—गदल ने कहा—‘तेरे काका ने तुझको बेटा समझकर अपना दूसरा ब्याह नामन्जूर कर दिया था । याद रखना, उसके और कोई नहीं ।’

निहाल ने सिर झुका लिया ।

भागा हुआ एक लड़का आया ।

‘दादी !’—वह चिल्लाया ।

‘क्या है रे ?’—गदल ने सशङ्क होकर देखा ।

पुलिस हथियार बन्द होकर आ रही है ।

निहाल ने गदल की ओर रहस्यभरी दृष्टि से देखा ।

गदल ने कहा—‘पांत उठने में ज्यादा देर नहीं है ।’

‘लेकिन वे कब मानेंगे ?’

‘उन्हें रोकना होगा ।’

‘उनके पास बन्दूकें हैं ।’

‘बन्दूकें हमारे पास भी हैं, निहाल ।’—गदल ने कहा—‘डांग में बन्दूकों की क्या कमी ?’

‘पर हम फिर क्या खाएंगे !’

‘जो भगवान् देगा ।’

बाहर पुलिस की गाड़ी का भोंपू बजा । निहाल आगे बढ़ा । दरोगा ने उतरकर कहा—‘यहां दावत हो रही है ?’

निहाल भौंचक रह गया । जिस आदमी ने रिश्वत ली थी, अब वह पहचान भी नहीं रहा था !

‘हां । हो रही है ।’—उसने क्रुद्ध स्वर में कहा ।

‘पच्चीस आदमी से ऊपर हैं ?’

‘गिनकर हम नहीं खिलाते, दरोगाजी ।’

‘मगर तुम कानून तो नहीं तोड़ सकते ?’

‘कानून राज का कल का है, मगर बिरादरी का कानून सदा का है, हमें राज नहीं लेना है, बिरादरी से काम है।’

‘तो मैं गिरफ्तार करूंगा।’

गदल ने पुकारा—निहाल !

निहाल भीतर गया !

गदल ने कहा—पंगत खतम होने तक इन्हें रोकना ही होगा !

‘फिर ?’

‘फिर सबको पीछे से निकाल देंगे। अगर कोई पकड़ा गया, तो बिरादरी क्या कहेगी ?’

‘पर ये कैसे न रुकेंगे। गोली चलाएंगे।’

‘तू न डर। छत पर नरायन चार आदमियों के साथ बन्दूकें लिए बैठा है।’

निहाल कांप उठा। उसने धबराए हुए स्वर से समझाने की कोशिश की—हमारी टोपीदार हैं, उनकी रफल हैं।

‘कुछ भी हो, पंगत उतर जाएगी।’

‘और फिर ?’

‘तुम सब भागना।’

‘हठात् लालटेन बुझ गई।’

धाएं-धाएं की आवाज आई। गोलियां अंधकार में चलने लगीं।

गदल ने चिल्लाकर कहा—सौगन्ध है, खाकर उठना।

पर सबको जल्दी की फिकर थी।

बाहर धाएं-धाएं हो रही थी। कोई चिल्लाकर गिरा।

पांत पीछे से निकलने लगी।

जब सब चले गए, गदल ऊपर चढ़ी। निहाल से कहा—बेटा।

उसके स्वर की अखंड ममता सुनकर निहाल के रोंगटे उस हलचल में भी खड़े हो गए। इससे पहले कि वह उत्तर दे, गदल ने कहा—तुझे मेरी कोख की सौगंध है। नरायन को और बहू-बच्चों को लेकर निकल

जा पीछे से ।

‘और तू ?’

‘मेरी फिकर छोड़ ! मैं देख रही हूँ तेरा काका मुझे बुला रहा है ।’

निहाल ने बहस नहीं की । गदल ने एक बन्दूक वाले से भरी बन्दूक लेकर कहा—चले जाओ सब, निकल जाओ ।

सन्तान के मोह से जकड़े हुए युवकों को आपत्ति ने अन्धकार में विलीन कर दिया ।

गदल ने घोड़ा दबाया । कोई चिल्लाकर गिरा । वह हंसी । विकराल हास्य उस अन्धकार में गूँज उठा ।

दरोगा ने सुना, तो चौंका । औरत ! मरद कहां गए ! उसके कुछ सिपाहियों ने पीछे से घिराव डाला और ऊपर चढ़ गए । गोली चलाई । गदल के पेट में लगी ।

आठ

युद्ध समाप्त हो गया था । गदल रक्त से भीगी हुई पड़ी थी । पुलिस के जवान इकट्ठे हो गए ।

दरोगा ने पूछा—यहां तो कोई नहीं ?

‘टुझूर !’—एक सिपाही ने कहा—यह औरत है ।

दरोगा आगे बढ़ आया । उसने देखा और पूछा—तू कौन है ?

गदल मुस्कराई और धीरे से कहा—कारज हो गया, दरोगाजी । आत्मा को शान्ति मिल गई ।

दरोगा ने झल्लाकर कहा—पर तू है कौन ?

गदल ने और भी क्षीण स्वर से कहा—जो एक दिन अकेला न रह सका, उसीकी...

और सिर लुढ़क गया । उसके होंठों पर मुस्कराहट ऐसी ही दिखाई दे रही थी, जैसे अब पुराने अन्धकार में जलाकर लाई हुई...पहले की बुझी लालटेन...

